लाडनूं के जैन मंदिर का कला वैभव

डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी

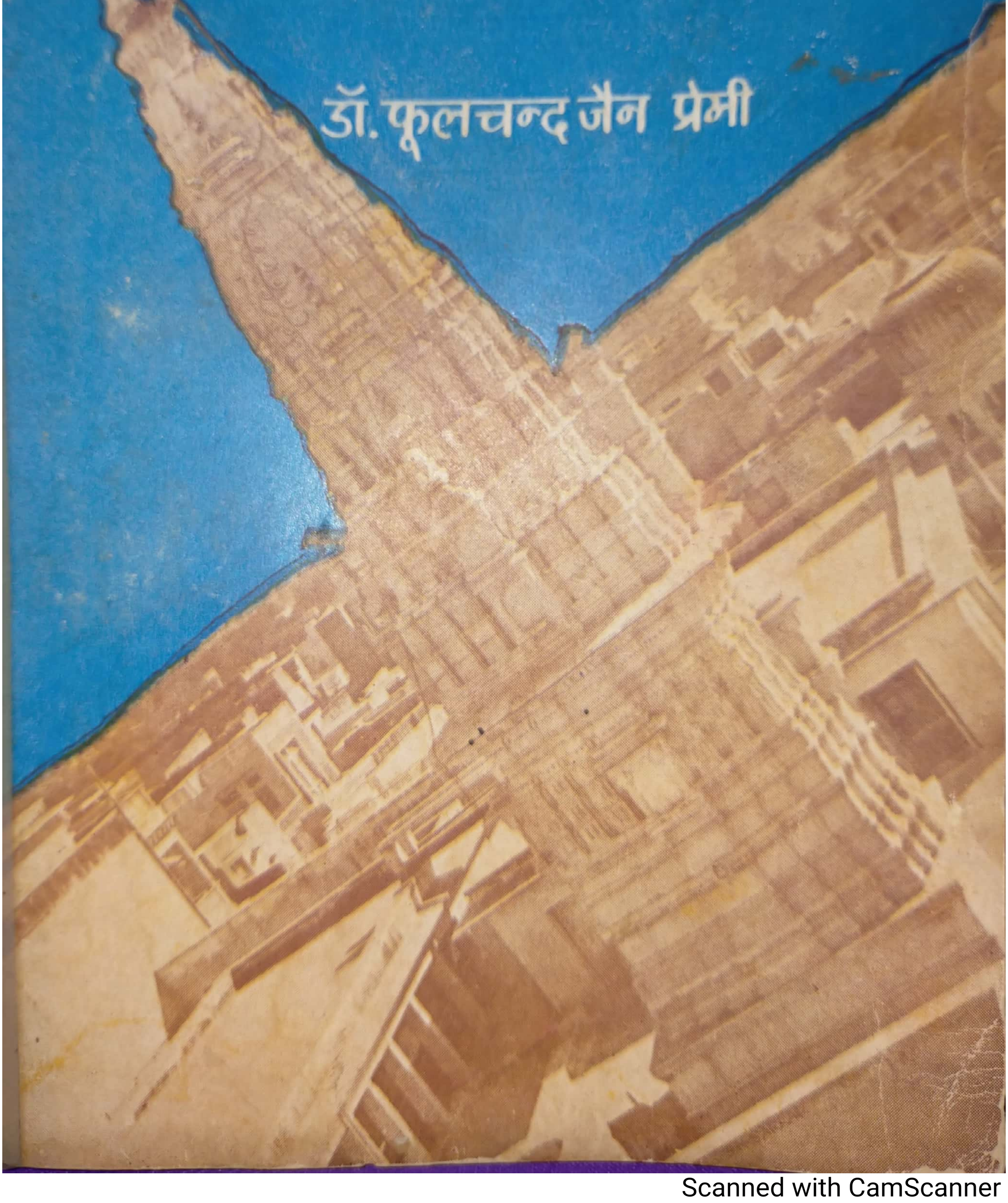

Scanned with CamScanner

लाडनूं के जैन मन्दिर का कला वैभव

(श्री दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर)

लेखक

डॉ० फूलचन्द्र जैन प्रेमी

एम० ए०, आचार्य (जैन दर्शन एवं प्राकृत) पी-एच०डी०

अध्यक्ष, जैन दर्शन विभाग

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

9450179254

anekantjf@gmail.com

प्रकाशक

श्री डायमल सेठी चेरिटेबल ट्रस्ट

५५, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता–७

Scanned with CamScanner

प्रथम संस्करण १९८८

मूल्य–२० रु०

पुस्तक प्राप्ति स्थान
श्री डायमल सेठी चेरिटेबल ट्रस्ट
५५, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता–७

डॉ० फूलचन्द्र जैन प्रेमी
पी ३/२ लेन नं० १३,
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी–२२१००५

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस
बी० २०/४४ भेलूपुर, वाराणसी–१०

Scanned with CamScanner

श्रीमती मानिक कुमारी सेठी

श्री नथमल जी सेठी

पूज्यनीय पिताश्री स्व० नथमलजी सेठी

(जन्म ३-४-१९१४, स्वर्गवास-३०-१२-१९८४)

एवं

पूज्यनीया स्व० मातुश्री श्रीमती मानिक कुमारी सेठी

(जन्म -४ दिसम्बर १९१८, स्वर्गवास-१३ दिसम्बर १९७१)

की

पुण्य स्मृति में प्रकाशित

प्रकाशकीय

हमारे पूज्य स्व० पिता श्री नथमलजी सेठी जैनधर्म, संस्कृति और कला के अनन्य भक्त थे। सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध अपनी जन्मभूमि लाडनूं से उनका गहरा लगाव था। वे अपने मन में प्रारम्भ से ही इस नगर को प्रसिद्धि में लाने और पर्यटक केन्द्र के रूप में विकसित करने की आकांक्षा संजोये हुए थे क्योंकि यह नगर अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यहाँ का दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर तो मूर्ति एवं स्थापत्य कला के संगम का द्योतक है जिसमें अनेक प्राचीन कलात्मक मूर्तियों के साथ ही विश्व प्रसिद्ध जैन सरस्वती की अद्‌भुत मूर्ति है। किन्तु इन सब दृष्टियों से जितनी प्रसिद्धि इस नगर को प्राप्त होनी चाहिए थी, वह नहीं थी! अतः पिताजी हमारी मातुश्री श्रीमती मानिक कुमारी सेठी (स्वर्गवास १३ सितम्बर १९७१) की स्मृति में लाडनूं के दिगम्बर जैन बड़े मंदिर के कला वैभव का परिचय कराने वाली पुस्तक प्रकाशित कराने के इच्छुक थे, किन्तु पुस्तक तैयार कौन करे? यह उनके सामने बड़ी समस्या थी। वे अनेक वर्षों से ऐसे विद्वान् की तलाश में थे। कुछ लोगों से इस विषय में बात भी की, किन्तु बात बनी नहीं। इसी उबीच नकी मुलाकात बड़े जैन मंदिर में डॉ० फूलचन्द जैन प्रेमी (स्थानीय जैन विश्व भारती में उस समय जैनविद्या एवं प्राकृत के प्राध्यापक) से हो गई। पिताजीने डॉ० प्रेमीजी में जैनविद्या, संस्कृति, कला, इतिहास और साहित्य के प्रति गहरी रूचि और इनकी व्यापक प्रसिद्धि हेतु ललक देखी, तब उन्होंने इनके समक्ष इस प्रकार की पुस्तक लिखने का प्रस्ताव रखा। प्रेमी जी ने इसे स्वीकार करके हम सभी की इच्छा पूर्ति की। उन्होंने बहुत ही कृपापूर्वक अपना अमूल्य समय देकर आत्मीयता के साथ यह कार्य किया है। हम सभी आपके बहुत-बहुत आभारी हैं।

हमारे पिताजी लाडनूं के इतिहास के विषय में फुटकर-फुटकर सामग्री भी संकलित करते रहते थे। कला, संस्कृति तथा धार्मिक ग्रन्थों के संग्रह और उनके अध्ययन-मनन में गहरी रुचि थी। विद्वानों के प्रति भी विशेष आदर भाव था। वे जहाँ कहीं भी लाडनूं के इतिहास सम्बन्धी उल्लेख पाते अथवा विद्वानों, इतिहासकारों से ज्ञात करते उसे संग्रह करते रहते थे। उन्होंने डॉ० फूलचन्द जी को दिगम्बर जैन बड़े मंदिर जी की प्रायः सभी प्राचीन मूर्तियों, शिलालेखों, भूगर्भ से प्राप्त सामग्री, प्रतिष्ठाओं का विवरण तथा अन्यान्य तथ्यों का अवलोकन

Scanned with CamScanner

कराया और चित्र उपलब्ध कराये । साथ ही प्राचीन अन्वेषण की दृष्टि से सम्पूर्ण लाडनूं नगर के प्रत्येक प्राचीन मंदिरों, अवशेषों, गढ़, बावड़ी, छतरी आदि के अवलोकनार्थ एवं सामग्री इकट्ठी करने कई बार साथ गये । पिताजी के कलकत्ता आ जाने के बाद प्रेमी जी ने प्रत्येक बेदी में प्रतिष्ठित उन-उन मूर्तियों के पास बैठकर बड़े ही श्रम से उनका कलात्मक परिचय लिखा है । हम लोग सामान्य रूप से तीर्थङ्कर प्रतिमाओं के दर्शन कर लेते हैं किन्तु उनकी कलात्मक एवं अन्य विशेषतायें नहीं जान पाते परन्तु इस पुस्तक के अध्ययन के बाद उन मूर्तियों की दिव्यता, भव्यता एवं महत्ता ज्ञात हो जाती है, तब इन जिन-प्रतिमाओं के दर्शन का आनन्द और भी द्विगुणित हो जाता है ।

इस पुस्तक की सम्पूर्ण पाण्डुलिपि (प्रेस कापी) काफी पहले ही हमारे पास आ चुकी थी और पूज्य पिताजी इसे स्वयं अच्छे रूप में प्रकाशित कराने ही वाले थे कि अन्यान्य व्यस्तताओं में लग जाने और उसके बाद अचानक उनका स्वर्गवास (३० दिसम्बर १९८४) हो जाने से वे इस पुस्तक को अपने सामने प्रकाशित रूप में न देख सके ।

पिताजी के स्वर्गवास से हमलोग अपार दुःख का निरन्तर अनुभव कर ही रहे हैं किन्तु इस पुस्तक के प्रकाशन से उनकी अपूर्ण इच्छा को पूरी होते देख हम लोगों को हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव भी हो रहा है । यदि आज वे होते तो वे अपार खुशी का अनुभव करते । हम लोगों को इस बात का संतोष है कि पूज्य पिताजी और माताजी-इन दोनों की स्मृति में इसे प्रकाशित कर उनकी इच्छा की पूर्ति की है । अब तो लाडनूं की जैन सरस्वती की मूर्ति, सुखाश्रम और जैन विश्व भारती आदि विशेषताओं के कारण देश-विदेशों में क्रमशः प्रसिद्धि को प्राप्त करता जा रहा है । डॉ० फूलचन्द जैन प्रेमी ने इस पुस्तक को लिखने और प्रकाशित कराने में जो सहयोग और अपना अमूल्य श्रम और समय दिया उस सबके प्रति हमारा परिवार, डायमल जैन चेरीटेबल ट्रस्ट एवं लाडनूं की समाज आपका पुनः पुनः आभार मानती है । लाडनूं, कलकत्ता, चुरु आदि के जिन-जिन महानुभावों ने जिस-किसी रूप में हमें इस पुस्तक के कार्य में सहयोग किया उन सबके प्रति भी हम अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं ।

निवेदक

श्रुत पञ्चमी
१९ जून १९८८

पुखराज सेठी
महावीर कुमार सेठी
महेन्द्र कुमार सेठी

Scanned with CamScanner

प्राक्कथन

संस्कृति की गौरवपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए जितने भी साधनों का हम प्रयोग करते हैं उनमें 'कला' सबसे महत्त्वपूर्ण है। कला में वे ही भावनायें मूर्तरूप धारण करतीं हैं जो किसी समाज के जीवन की प्रेरक शक्तियाँ होती हैं। इसीलिए मंदिरों, मूर्तियों तथा कला के विविध आयामों को 'संस्कृति के प्रतीक' के रूप में स्वीकार किया जाता है। जैनधर्म की आत्मा उसकी 'कला' में भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होती है। वैसे कला कोई निरपेक्ष इकाई नहीं है, वह तो मानव इतिहास और विश्व की सम्मिश्रित संस्कृति से जुड़ी है। उसके अभिव्यक्त मूलतत्त्व किसी एक की परिधि में नहीं सिमट सकते। वे जितने ही सर्वग्राही होंगे उतने ही ससीमता से मुक्त मानव सत्ता की विकसित चेतना का दिग्दर्शन करा सकते हैं। यद्यपि जैन कला की भावभूमि पर धर्म, दर्शन और अध्यात्म का प्रभुत्व दिखलाई देता है किन्तु वह सौन्दर्यबोध के आनन्द की सृष्टि करती हुई आत्मोत्सर्ग, शान्ति और समत्व की भावनाओं को उभारने में अधिक सक्षम है। क्योंकि उसके साथ एक प्रकार की अलौकिकता और अनुपमता उसमें जुड़ी है। वह आध्यात्मिक चिंतन एवं उच्च आत्मानुभूति की प्राप्ति में निमित्त है। इन्हीं सबके पोषण में कला ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। वस्तुतः कला की प्रस्तुति भी धार्मिक सिद्धान्तों, आदर्शों एवं मान्यताओं की दृष्टि से तथा धर्म को प्रभावक बनाने की दृष्टि से होती रही है। इसके द्वारा धर्म और धर्म से सम्बन्धित सभी अंगों का व्यापक प्रचार और प्रसार होता है।

जैन कला भारतीय कला, साहित्य और इतिहास का अभिन्न अंग है और इसने प्रत्येक युग की भारतीय कला को प्रभावित किया है। भारतीय मूर्ति-कला, स्थापत्य कला और चित्रकला—कला के इन सभी रूपों के सृजन और उन्नयन में जैन कला और उनके शिल्पियों का अपूर्व और अद्भुत कौशल सर्वत्र देखने को मिलता है। जैन धर्मानुयायियों ने अपने देश की सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध बनाने और समस्त कलाओं की अगणित तथा विविध उत्कृष्ट कृतियों से सम्पन्न करने एवं ललित कलाओं के उन्नयन में सदा महनीय योगदान किया है। इसके उदाहरण देश के कोने कोने में व्याप्त हैं।

Scanned with CamScanner

इन केन्द्रों में से राजस्थान के सांस्कृतिक केन्द्र लाडनूं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन विश्व भारती के माध्यम से मुझे इस नगर में लगभग चार वर्ष तक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यहाँ के श्री दि० जैन बड़े मंदिर में दर्शन करते समय अचानक ही मेरी मुलाकात श्री नथमल जी सेठी से हो गई। परस्पर वार्तालाप से मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि श्री सेठी जी कुशल व्यवसायी होते हुए भी उन्हें अपनी संस्कृति, धर्म और साहित्य के प्रति गहरी रुचि ही नहीं अपितु इन विषयों में उनका अच्छा अध्ययन भी है। उन्हें अपनी जन्मभूमि लाडनूं से अत्यधिक प्रेम तो है ही, वे इस बड़े जैन मंन्दिर के कला वैभव को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि में लाने के भी इच्छुक थे। सेठी जी ने इतिहास, कला तथा पुरातत्त्व के प्रति मेरी रुचि देखकर मुझसे इस मन्दिर की महत्ता को उजागर करने के उद्देश्य से एक पुस्तक लिखने का आग्रह किया। जिसे मैंने स्वीकार किया। यद्यपि कला और पुरातत्त्व विषय पर मेरा पूरा अधिकार तो नहीं है किन्तु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर पर अध्ययन किये गये इस विषय के संस्कार मेरे मन में विद्यमान थे ही, किन्तु यह पुस्तक लिखने के निमित्त मैंने जैन कला सम्बन्धी अनेक ग्रंथों का तथा लाडनूं आदि के इतिहास के विषय में काफी अध्ययन किया।

मन्दिर के कला वैभव पर लिखना प्रारम्भ किया तो काफी कठिनाईयाँ सामने आयीं किन्तु जैसे-जैसे मैंने प्रत्येक मूर्ति के पास बैठकर उन मूर्तियों व स्तम्भों, परिकर तोरण आदि को विविध दृष्टियों से देखकर लिखना प्रारम्भ किया तो धीरे-धीरे काफी विवरण इकट्ठा होता गया। श्री सेठीजी स्वयं कई बार मूर्तियों एवं उनके शिला लेखों के अध्ययन आदि के समय मेरे साथ रहे तथा आवश्यक सुझाव दिये। क्रमशः मैंने सभी प्राचीन मूर्तियों का कला आदि की दृष्टि से परिचय लिख लिया था। सेठी जी के कलकत्ता वापिस जाने के बाद, जब कभी मैं उन मूर्तियों, तोरणों आदि को पुनः-पुनः देखता तो अनेक नई विशेषतायें दिखलाई देतीं। मैं उन्हें यथास्थान लिखता रहा और इस तरह लगभग डेढ़-दो वर्षों में यह पुस्तक तैयार हुई। सेठी जी ने इसे बहुत अच्छे रूप में प्रकाशित कराने की कलकत्ता में ही व्यवस्था कर ली थी किन्तु उनकी व्यस्तता और कुछ अस्वस्थता के चलते वे अपने सामने इसे प्रकाशित नहीं करा सके। उनके निधन के पश्चात् उनके सुपुत्रों ने इसके मुद्रण का कार्य वाराणसी से कराने का दायित्व मुझे सौंपा। अगस्त १९८७ में पर्युषण पर्व के अवसर पर मुझे लाडनूं की दिगम्बर जैन समाज ने आमंत्रित किया। मैंने पुनः एक बार

Scanned with CamScanner

इस मन्दिर का सूक्ष्मता से अवलोकन किया और कई नई बातें इसमें जोड़ दीं। तलघर वाले मंदिर की दीवारों एवं द्वारों से चूना साफ हो जाने के कारण कुछ अतिरिक्त स्तम्भ लेख और मूर्तियाँ स्पष्ट दिखलाई देने लगी हैं। अतः इनके चित्र और विवरण भी इसमें सम्मिलित कर दिये गये हैं।

इस पुस्तक के लेखन में मुझे जिनसे सहयोग और प्रेरणायें मिलीं उनमें सर्वप्रथम स्व० श्री नथमल जी सेठी हैं। आपने मुझे लाडनूं की प्रतिष्ठाओं का विवरण, मूर्तियों, स्तम्भों एवं द्वारों के चित्र उपलब्ध कराये। मूर्तियों आदि के विवरण लिखने में साथ रहकर काफी सुझाव एवं आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराई। मुझसे इस पुस्तक के लिखवाने का सम्पूर्ण श्रेय श्री सेठी जी को है। यदि उनका निरन्तर स्नेह, प्रेरणा और सहयोग न मिलता तो शायद इस पुण्यार्जन का सौभाग्य भी प्राप्त न होता। सेठी परिवार के ही श्री पुखराज जी, श्री महावीर कुमार जी श्री महेन्द्रकुमार जी तथा श्री पवनकुमार जी के परिवार के सदस्यों को भी हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ कि इन्होंने अपने पूज्य पिताजी के इस पुस्तक के प्रकाशन रूप अधूरे स्वप्न को पूरा करने में पूरा उत्साह दिखलाया और इसके प्रकाशन हेतु साक्षात् एवं पत्रों द्वारा मुझे बराबर प्रेरित करते रहे।

लोक संस्कृति संस्थान, चुरु के श्री गोविन्द अग्रवाल के पत्रों एवं लेखों द्वारा विशेष सहयोग एवं बल प्राप्त हुआ। मैं इनके प्रति आभार और आदर व्यक्त करता हूँ। सम्मान्य डॉ० नथमल जी टाटिया, श्री भंवरलाल जी सेठी, श्री श्रीचन्द जी, श्री हुलासमल जी, श्री मालचंद जी बोथरा, सुश्री वीणा बहिन, श्री डूँगरमल जी, श्री राजकुमार जी, श्री पन्नालाल जी पाटनी, श्री कैलाश जी सेठी आदि लाडनूं की समस्त दिगम्बर जैन समाज एवं अन्य अनेक गणमान्य महानुभावों के सहयोग के प्रति धन्यवाद व्यक्त करता हूँ।

इस कार्य में श्री मांगीलाल जी सेठी एवं प्रसिद्ध फोटोग्राफर श्री जयन्ती लाल जी जैन के अथक श्रम, सहयोग एवं अपनत्व के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। जैन विश्व भारती, पारमार्थिक शिक्षण संस्था, ब्राह्मी विद्यापीठ, युवक परिषद्, महावीर हीरोज तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में जिनसे किञ्चित भी सहयोग मिला हो, उन सबके प्रति भी आभार ज्ञापित करता हूँ। प्रेस कापी तैयार करने एवं लेखन कार्य में प्रवृत्त रखने में सहयोग के लिए मेरी धर्मपत्नी

Scanned with CamScanner

श्रीमती मुन्नी (पुष्पा) जैन तथा पुत्र अनेकान्त कुमार, अरहन्त कुमार एवं पुत्री इन्दु जैन की प्रगति हेतु मंगल कामना करता हूँ। अमेरिकन इंस्टीट्यूट के प्रो० एम० एस० ढाकी जी को उनके अच्छे सुझावों और सम्मति के लिए आभार व्यक्त करता हूँ। महावीर प्रेस के मालिक श्री बाबूलाल जी फागुल्ल एवं श्री राजकुमार जैन को उनके अच्छे सहयोग के प्रति भी अपना आभार प्रकट करता हूँ। यद्यपि अपने विषय की इस प्रथम पुस्तक में सम्बद्ध विषय को श्रमपूर्वक प्रस्तुत करने का पूरा प्रयास किया है किन्तु जानकारी की अपनी सीमाओं के कारण इसमें अनेक कमियाँ और त्रुटियाँ सम्भव हैं। सुधी पाठकों से निवेदन है कि कृपया मुझे अपने सुझाव अवश्य सूचित करें ताकि भविष्य में उनका समुचित उपयोग किया जा सके।

श्रुत पंचमी
१९ जून १९८८

डॉ० फूलचन्द जैन प्रेमी
निवास–पी ३/२ लेन नं० १३
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी ५.

Scanned with CamScanner

पूज्य पिताजी श्री नथमल सेठी

हमारे पूज्यनीय पिताश्री नथमलजी सेठी जैन समाज के सुप्रसिद्ध समाजसेवी, धार्मिक प्रवृत्ति के उदार हृदय व्यक्ति एवं प्रतिष्ठित व्यवसायी थे। लाडनूं नगर में ३ अगस्त सन् १९१४ को आपका जन्म एवं १९३० में आपका विवाह हुआ था। हमारे बाबा का नाम श्री डायमल जी सेठी था। हमारी माँ श्रीमती मानिक कुमारी सेठी भी उदार प्रवृत्ति की धार्मिक महिला थीं। पूज्य पिताजी की जैन समाज में जितनी प्रतिष्ठा थी अन्यान्य समाजों में भी उनकी काफी प्रतिष्ठा थी।

दस वर्ष की अल्प-अवस्था से ही आपने जूट-व्यवसाय के क्षेत्र में पदार्पण कर लिया था तथा उच्च अध्यवसाय तथा लगन के द्वारा आपने अपने व्यवसाय को बंगाल, बिहार और आसाम तक फैलाया और अपनी उच्च प्रामाणिकता, व्यवहार कुशलता एवं लोकप्रिय व्यक्तित्व के कारण इस क्षेत्र में अच्छा गौरव प्राप्त किया। व्यावसायिक कार्यों के साथ ही आप प्रारम्भ से ही समाज सेवा के कार्यों में गहरी रुचि लेते थे। अनेक धार्मिक, शैक्षिक एवं सामाजिक संस्थाओं के संचालक रहे। लाडनूं की दिगम्बर जैन समाज, महावीर हायर सेकेण्डरी स्कूल, महावीर प्रायमरी स्कूल आदि संस्थाओं के अनेक वर्षों तक अध्यक्ष एवं ट्रस्टी रहे। कलकत्ता की अहिंसा प्रचार समिति, दिगम्बर जैन विद्यालय, दिगम्बर जैन बालिका विद्यालय, जैन सभा, दिगम्बर जैन बंगाल-बिहार-उड़ीसा तीर्थक्षेत्र कमेटी, भगवान् महावीर की २५ सौ वाँ निर्वाण महोत्सव समिति, दिगम्बर जैन परिषद्, डायमल सेठी चेरिटेबल ट्रस्ट आदि अनेक संस्थाओं के प्रमुख पदों पर लम्बे समय तक सक्रिय रूप से कार्य करके समाज सेवा में संलग्न रहे।

व्यावसायिक संगठन के क्षेत्र में आप बंगाल चैम्बर ऑफ कामर्स, इण्डियन चैम्बर आफ कॉमर्स, ईस्ट इण्डिया जूट बेलर्स एसोसीएसन, बंगाल जूट डीलर्स एसोसीएशन जैसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठानों के विभिन्न प्रतिष्ठित पदों पर अनेक वर्षों तक सेवा कार्य करके इन क्षेत्रों में अच्छी ख्याति अर्जित की।

१९६४ में आपने अनेक यूरोपीय देशों की यात्रा की। इस यात्रा के अच्छे अनुभवों के आधार पर सामाजिक, व्यावसायिक एवं राष्ट्रीय अभ्युन्नति में महनीय योगदान किया।

Scanned with CamScanner

आपका पारिवारिक जीवन बहुत ही सुखी था। आपके चार पुत्र श्री पुखराज सेठी, श्री पवन कुमार सेठी, श्री महावीर कुमार सेठी और श्री महेन्द्र सेठी तथा पाँच पुत्रियाँ—श्रीमती विमला देवी पाटनी, श्रीमती सुलोचना देवी पहाड़िया, श्रीमती सरस्वती देवी पहाड़िया, श्रीमती सीता जैन एवं श्रीमती सरिता पांड्या हैं।

इस प्रकार आपने अपने अध्यवसाय से पूर्ण यशस्वी जीवन पाया। मृदु एवं उदार हृदय वाले पूज्य पिताजी को आतिथ्य सत्कार में अपूर्व आनन्द का अनुभव होता था। जो कोई भी आपके सम्पर्क में एक बार आता उसे वे अपना बना लेते थे। सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में आप उदार हृदय से आर्थिक सहयोग करने में सदा आगे रहते थे। ऐसे पूज्य पिताश्री के पद चिह्नों पर हम सदा बढ़ते रहें—यही जिनेन्द्र देव से सदा कामना है। यह पुस्तक जिसे हमारे पिताजी हमारी पूज्य मातुश्री की स्मृति में प्रकाशित कराना चाहते थे, अब हमें इन दोनों की स्मृति में प्रकाशित करना पड़ रहा है। हम जिनेन्द्र देव से सदा प्रार्थना करते हैं कि हमें अपने देश, समाज साहित्य, संस्कृति और धर्म की सेवा करने की प्रेरणायें मिलती रहें ताकि अपने पिताजी के आदर्शों पर चलकर उनसे सतत् आगे बढ़ने का बल प्राप्त करते रहें।

श्री नथमल जी सेठी के उद्‌गार[1]

पुण्योदय से लाडनूं में श्री दिगम्बर जैन बड़े मन्दिर के ठीक सामने मेरा घर है। लाडनूं में रहते समय मन्दिर के दर्शन करना नित्य का कर्म रहता ही है। करीब ४० वर्षों तक यही क्रम चलता रहा, लेकिन तब तक इस मन्दिर में प्रत्येक मूर्ति कितनी मनोज्ञ, कितनी प्राचीन तथा कितनी निधि भरी पड़ी है, इस तरफ लक्ष्य ही नहीं गया। करीब १५-२० वर्षों से प्राचीन स्थान एवं मूर्तियों की कला आदि को देखने-समझने की विशेष रुचि होने से प्रायः समस्त भारतवर्ष एवम् यूरोप में रोम जहाँ की विशेष प्राचीन सभ्यता मानी जाती है, वहाँ भी सब जगह घूमकर देखने के बाद जब फिर लाडनूं के इस प्राचीन दिगम्बर जैन बड़े मन्दिर की मूर्तियों को लक्ष्य करके देखा तो "दीया तले अन्धेरा" नजर आया।

यह मंदिर कितना प्राचीन है, किसने बनवाया, आगे कितना जीर्णोद्धार

१. यह वक्तव्य श्री नथमल जी सेठी ने लेखक को प्रेषित पत्र में प्रकाशकीय वक्तव्य के रूप में भेजा था।

हुआ आदि का पूर्ण ऐतिहासिक विवरण मिलना मुश्किल है, लेकिन इसमें मूर्तियों, खम्भों, मन्दिर आदि के लेख से १०-११वीं शताब्दी का प्रमाणित होता ही है। इसके अलावा अनेक मूर्तियाँ और भी प्राचीन हैं, जिन पर लेख नहीं है और कुछ तो समय पाकर बहुत जीर्ण हो गई हैं। जैन सरस्वती की मूर्ति तो अति मनोज्ञ, और कला पूर्ण है। श्रीमान् साहू-शान्ति प्रसाद जी जैन ने सरस्वती की इस मूर्ति को अतिशय सुन्दर व श्रेष्ठ कला का उत्तम उदाहरण बताया था। इस मन्दिर में भगवान् शांतिनाथ की मूर्ति के आगे जो तोरण है, उस मूर्ति के एकाग्र होकर दर्शन किये जायें तो अति शान्त एवं सजीव मुद्रा नजर आती है। इसका तोरण तो कला की दृष्टि से इतना श्रेष्ठ है कि ऐसे उदाहरण कम ही मिलते होंगे।

नीचे तलघर में प्राचीन मन्दिर के दोनों दरवाजों की कला भी बहुत सुन्दर है। भीतर वेदी की ऊपरी छत, खम्भा आदि की उत्कृष्ट कला देखते ही बनती है। इतने प्राचीन मंदिर की प्रतिष्ठा के विषय में श्रीमान् सेठ गजराजजी गंगवाल बतलाते थे कि यहाँ तेईस प्रतिष्ठायें हो चुकी हैं तथा २४ वीं प्रतिष्ठा इन्हीं गंगवाल परिवार ने संवत् १९८७ में कराई थी। बहुत खोजबीन करने पर भी पहले की २३ प्रतिष्ठाओं का विवरण मंदिर जी में नहीं मिला। अन्त में कितनी ही-प्रतिष्ठाओं का विवरण तो श्री रतनलाल जी भाट केकड़ी-अजमेर वाले की बही से तथा कुछ झालरापाटन शास्त्र भण्डार में प्राप्त एक शास्त्र गुच्छक से प्राप्त किया।

इस प्रकार यह अमूल्य वैभव चारों ओर बिखरा हुआ है। इसे ज्यों-ज्यों सूक्ष्मता से देखना शुरू किया तो इस सबके परिचय हेतु एक पुस्तक के प्रकाशन की प्रबल भावना बढ़ती गई। इसी बीच यहाँ की जैन विश्व भारती में जैन विद्या एवं प्राकृत के प्राध्यापक श्रीमान् डॉ० फूलचन्द्र जी जैन प्रेमी से १९७७ में दिगम्बर जैन बड़े मंदिर में दर्शन करते समय मुलाकात हो गई। बातचीत से इस मन्दिर के प्रति उनकी भी गहरी रुचि देखकर मैंने उनसे इस पर पुस्तक लिखने का भाव व्यक्त किया तथा अपने द्वारा संकलित कुछ फुटकर सामग्री दिखलाई। इसके बाद मैंने उन्हें मन्दिर की सभी प्राचीन मूर्तियों, शिलालेखों तथा अन्य कलाकृतियों आदि का अवलोकन कराया। उन्होंने इन सबका विवरण आदि तैयार करने में अपना काफी बहुमूल्य श्रम और समय लगाया। मैं तो यही कहूँगा कि प्रेमी जी की लगन और श्रम से ही इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित कराने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। आपका हृदय से बहुत आभारी हूँ।

Scanned with CamScanner

इस कार्य में लाडनूं के श्री भंवरलाल जी सेठी, श्री श्रीचन्द्र जी सेठी, श्री राजकुमार जी पाटनी, तथा अन्य सभी बन्धुओं का पूरा सहयोग मिला है। मैं सभी का आभारी हूँ। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती मानिक कुमारी सेठी, जो बहुत समय तक अस्वस्थ रहीं, वे मन्दिर जी दर्शनार्थ नहीं जा सकती थीं किन्तु घर के बरामदे में मन्दिर जी के सामने घण्टों बैठकर धर्म-ध्यान किया करतीं थीं। उनका भी इस मन्दिर के प्रति बहुत लगाव था। उनकी भावना को साकार रूप देने की इच्छा से मेरे पुत्रों ने उनकी स्मृति स्वरूप यह पुस्तक प्रकाशित करने की भावना व्यक्त की थी। इसमें बहुत कुछ त्रुटियाँ स्वाभाविक हैं, जिनके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

—**नथमल सेठी,** कलकत्ता

सांस्कृतिक नगर लाडनूं

राजस्थान की भूमि जहाँ शौर्य, त्याग, बलिदान और देशप्रेम की यशोगाथाओं के लिए विश्वविख्यात है, वहीं कला, संस्कृति तथा साहित्य के क्षेत्र में भी सदा अग्रणी रही है। जैन धर्म, संस्कृति, साहित्य एवं कला के विकास में भी राजस्थान का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जाता है। इसी प्रदेश में लाडनूं अपनी नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना की दृष्टि से काफी समृद्ध माना जाता है। नागौर जिले के अन्तर्गत यह लाडनूं नगर दिल्ली-जोधपुर रेलमार्ग के मध्य तथा जयपुर से लगभग १३५ मील एवं जोधपुर से १६० मील दूर स्थित है। कला, संस्कृति और इतिहास की दृष्टि से इसे वैभवशाली नगर माना जाता है। जहाँ इसमें दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर, श्वेताम्बर जैन मन्दिर, चारभुजानाथ का मन्दिर, गढ़, बाबड़ी, छत्रियाँ तथा अनेक शिलालेख आदि प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर के अमूल्य प्रमाण हैं वहीं आधुनिक युग में निर्मित श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर (सुखाश्रम) तथा आचार्य तुलसी की इस जन्मस्थली में स्थापित जैन विश्व भारती क्रमशः कला एवं भव्यता तथा ज्ञान एवं ध्यान के क्षेत्र में अद्वितीय हैं। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य ख्यातिलब्ध जैन तथा हिन्दू मन्दिर एवं संस्थायें हैं।

विभिन्न पुरातात्त्विक साक्ष्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि आठवीं शती से लेकर सत्रहवीं शती तक यह एक समृद्ध नगर रहा है। खरतर-गच्छ की बृहद् गुर्वावलि में लाडनूं नगर का उल्लेख है।[1] लाडनूं का अन्य प्राचीन नाम क्या रहा है? इसका स्पष्ट उल्लेख मेरी दृष्टि में तो नहीं आया किन्तु परम्परा से इसका नाम 'बूढ़ी चन्देरी' कहा जाता है। वस्तुतः यह नगर तथा इसके आसपास का क्षेत्र जैन संस्कृति का महत्त्व-पूर्ण केन्द्र रहा है। समीपवर्ती सुजानगढ़, नागौर, चुरु, मेढ़ता आदि अनेक इस दृष्टि से आज भी उल्लेखनीय हैं। इस क्षेत्र में अभी ऐसे अनेक स्थान हैं जो प्रसिद्धि में नहीं हैं तथा कुछ ऐसे स्थान भी हैं जहाँ आज न तो कोई जैन समाज है और न जैन मन्दिर, फिर भी प्राचीन जैन संस्कृति के महान् केन्द्र के रूप में सामने आ रहे हैं। इनमें लाडनूं से ३१ किलो-मीटर दूर जाइल तहसील के अन्तर्गत 'गौराऊ' नामक एक छोटा सा

---

१. खरतरगच्छ की गुर्वावलि पृष्ठ ९३, संपादक मुनि जिनविजय जी।

Scanned with CamScanner

गाँव है। जहाँ १-२ वर्ष पूर्व पचासों धातु एवं पाषाण की जैन मूर्तियाँ तथा विविध पूजनपात्र आदि एक खेत से प्राप्त हुए हैं। इनमें १०वीं ११वीं शताब्दी के लेख हैं। इस खेत के आसपास के टीलों आदि के देखने से ज्ञात होता है कि यहाँ अभी खुदाई की जाए तो यह एक प्राचीन महान् जैन तीर्थ सिद्ध होने की सम्भावना है।

लाडनूं का समीपवर्ती क्षेत्र छापर-द्रोणपुर के नाम से जाना जाता है। डॉ० हीरालाल जैन[1] ने 'प्राकृत निर्वाण काण्ड' में उल्लिखित गुरुदत्तादि मुनियों की निर्वाण भूमि द्रोणगिरि फलहौदी (फलौदी) की स्थिति राजस्थान में दर्शायी है। इस निर्वाण भूमि की स्थिति कुछ लोग लाडनूं का समीपवर्ती छापर-द्रोणपुर क्षेत्र मानते हैं। यद्यपि वर्तमान में मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ के पास स्थित सुप्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक 'द्रोणगिरि' तीर्थक्षेत्र इस रूप में प्रसिद्ध है। अभी ये सब गहन अन्वेषणीय विषय हैं ताकि तथ्य सामने आ सकें। किन्तु यह स्पष्ट है कि लाडनूं एवं इसके आसपास का सम्पूर्ण क्षेत्र जैन संस्कृति की दृष्टि से काफी समृद्ध है।

चुरु के श्री गोविन्द अग्रवाल जी ने लाडनूं के इतिहास के सम्बन्ध में काफी खोज की है। इन्होंने अपने एक लेख में 'बांकोदास री ख्यात'[2] के आधार पर यह सिद्ध किया है कि लाडनूं को डाहलिया राजपूतों ने बसाया। मुँहणोत नैणसी (१६१०-७० ई०) के अनुसार भी इस क्षेत्र पर महाभारत कालीन शिशुपाल वंशीय डाहलिया पंवारों का काफी समय तक राज्य रहा। डाहलियों के बाद जोहियों ने, जोहियों के बाद मोहिलों ने और मोहिलों से राव मालदेव (जोधपुर) ने लाडनूं ठिकाने को लिया। नणसी के ही अनुसार बागड़ियों ने डाहलियों से छापर-द्रोणपुर आदि की धरती छीनकर यहाँ ९०० वर्ष राज्य किया। किन्तु श्री गोविन्द अग्रवाल ने नैणसी के द्वारा दिये गये इस समय को इतिहास विरुद्ध बतलाते हुए लिखा है कि 'वास्तव में मोहिल चौहानों ने वि० सं० की १२वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इस क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाया तथा लगभग चार सौ वर्षों तक राज्य किया।'[3] मोहिल के वंश में अनेक प्रभावशाली राणा हुए।

---

१. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान पृष्ठ ३२०।

२. बांकीदास री ख्यात पृ० २०१.

३. राजस्थान भारती पत्रिकाः जुलाई दिसम्बर १९७६ में श्री गोविन्द अग्रवाल जी का लेख।

मुख्य रूप से लाडनूं के भू-भाग पर राव जयसिंह मोहिल का अधिकार रहा। 'मोहिलों की ख्यात' से ज्ञात होता है कि मोहिल चौहान राठौड़ अरड़कमल ने सं० १४८९ में द्रोणपुर से आकर लाडनूं पर अपना अधिकार किया। इसके बाद भोजराज और भोजराज के बाद राव जयसिंह लाडनूं का अधिपति बना[1]। इसने कई कल्याणकारी कार्य किये। राव (राहू) दरवाजा, राव कुआं और राव बावड़ी का निर्माण राव राजसिंह द्वारा ही कराया गया। यह विशाल बावड़ी अब काफी टूट-फूट गई है अतः इसे अब कुछ वर्षों पूर्व बन्द कर दिया गया है। करीब ६० वर्ष पूर्व तक इसमें मीठा जल भरा रहता था। इसमें एक शिलालेख भी बतलाते हैं।

सन् १५३२ ई० में जोधपुर के राव मालदेव राठौड़ ने लाडनूं का ठिकाना मोहिलों से छीन लिया और तब से लेकर भारत की आजादी के पूर्व तक लाडनूं इन्हीं राठौड़ वंशीय जागीरदारों के अधिकार में रहा। लाडनूं क्षेत्र मुस्लिम शासकों से भी प्रभावित रहा है। श्री रामवल्लभ सोमानी के अनुसार वि० सं० १२३५ में सुल्तान मुहम्मद गौरी ने मेड़ता पर आक्रमण किया था। सम्भव है लाडनूं भी तब उसकी लपेट में आ गया हो और यहाँ के मन्दिरों और मूर्तियों को भी उसने नष्ट किया हो।[2]

यहाँ के गढ़ (किले) को सूक्ष्मता से देखने के बाद स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसका मूल स्वरूप भी काफी प्राचीन होते भी हुए समय-समय पर इसमें निर्माण द्वारा परिवर्तन होते रहे हैं। किले के भीतरी भाग में दीवारों पर कुछ मूर्तियाँ भी बनी हैं। इसके मुख्य दरवाजे के बाहर एक लेख ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी का है जिसमें नागौर के खानजादों में से फिरोजखान का उल्लेख बतलाते हैं किन्तु किले के भीतर एक मूर्ति के नीचे चार पंक्ति का सबसे पुराना एक लघु लेख सम्वत् १०१० का भी है।

लाडनूं में अनेक मन्दिर, मस्जिदें तो हैं ही। उत्कृष्ट वस्तु कला के उदाहरण के रूप में प्राचीन क्षत्रिओं का समूह भी सुखाश्रम के पास है। कागज को कलात्मक ढंग से मोड़कर जो रूप दिया जा सकता है वही कलात्मक चमत्कार इन छत्रियों के पत्थरों में प्रदर्शित किया गया है।

---

१. युवक परिषद् स्मारिका, लाडनूं १९७१-७२ में श्री गोविन्द अग्रवाल का लेख।

२. वही।

मुख्य रूप से लाडनूं के भू-भाग पर राव जयसिंह मोहिल का अधिकार रहा। 'मोहिलों की ख्यात' से ज्ञात होता है कि मोहिल चौहान राठौड़ अरड़कमल ने सं० १४८९ में द्रोणपुर से आकर लाडनूं पर अपना अधिकार किया। इसके बाद भोजराज और भोजराज के बाद राव जयसिंह लाडनूं का अधिपति बना[1]। इसने कई कल्याणकारी कार्य किये। राव (राहू) दरवाजा, राव कुआं और राव बावड़ी का निर्माण राव राजसिंह द्वारा ही कराया गया। यह विशाल बावड़ी अब काफी टूट-फूट गई है अतः इसे अब कुछ वर्षों पूर्व बन्द कर दिया गया है। करीब ६० वर्ष पूर्व तक इसमें मीठा जल भरा रहता था। इसमें एक शिलालेख भी बतलाते हैं।

सन् १५३२ ई० में जोधपुर के राव मालदेव राठौड़ ने लाडनूं का ठिकाना मोहिलों से छीन लिया और तब से लेकर भारत की आजादी के पूर्व तक लाडनूं इन्हीं राठौड़ वंशीय जागीरदारों के अधिकार में रहा। लाडनूं क्षेत्र मुस्लिम शासकों से भी प्रभावित रहा है। श्री रामवल्लभ सोमानी के अनुसार वि० सं० १२३५ में सुलतान मुहम्मद गौरी ने मेड़ता पर आक्रमण किया था। सम्भव है लाडनूं भी तब उसकी लपेट में आ गया हो और यहाँ के मन्दिरों और मूर्तियों को भी उसने नष्ट किया हो।[2]

यहाँ के गढ़ (किले) को सूक्ष्मता से देखने के बाद स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसका मूल स्वरूप भी काफी प्राचीन होते भी हुए समय-समय पर इसमें निर्माण द्वारा परिवर्तन होते रहे हैं। किले के भीतरी भाग में दीवारों पर कुछ मूर्तियाँ भी बनी हैं। इसके मुख्य दरवाजे के बाहर एक लेख ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी का है जिसमें नागौर के खानजादों में से फिरोजखान का उल्लेख बतलाते हैं किन्तु किले के भीतर एक मूर्ति के नीचे चार पंक्ति का सबसे पुराना एक लघु लेख सम्वत् १०१० का भी है।

लाडनूं में अनेक मन्दिर, मस्जिदें तो हैं ही। उत्कृष्ट वस्तु कला के उदाहरण के रूप में प्राचीन क्षत्रिओं का समूह भी सुखाश्रम के पास है। कागज को कलात्मक ढंग से मोड़कर जो रूप दिया जा सकता है वही कलात्मक चमत्कार इन छत्रियों के पत्थरों में प्रदर्शित किया गया है।

---

१. युवक परिषद् स्मारिका, लाडनूं १९७१-७२ में श्री गोविन्द अग्रवाल का लेख।

२. वही।

Scanned with CamScanner

इनके गुम्बद भी एक पाषाण से निर्मित हैं। इन छत्रिओं के स्तम्भ तथा अन्य स्थानों में अनेक मूर्तांकन—जैसे मल्लयुद्ध, संगीत, पनिहारिन आदि के दृश्य बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। ये छत्रियाँ यहाँ के जागीरदारों की स्मृति में बनाई गई थीं।

दिगम्बर जैन परम्परा की तरह श्वेताम्बर जैन परम्परा का भी यह महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। इसका ज्ञान वर्तमान में जनसंख्या की दृष्टि से इस समाज की अधिकता तथा सेवगों के चौक में स्थित श्री शान्तिनाथ श्वेताम्बर जैन मन्दिर आदि से होता है। इसमें अवशिष्ट प्रस्तर खण्डों, दरवाजों, मूर्तियों एवं शिलालेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह श्री शान्तिनाथ के नाम से प्रसिद्ध प्राचीन काल में एक कलापूर्ण समृद्ध मन्दिर रहा है, किन्तु इसे आक्रान्ताओं द्वारा अनेक बार तोड़ा गया लगता है। बाद में इसका जीर्णोद्धार भी हुआ। यहाँ के एक प्रस्तर में संवत् १३५२ का लेख है। इस मन्दिर की उपेक्षा को देखते हुए समाज को इसकी सुरक्षा एवं विकास की ओर समय रहते ध्यान देना आवश्यक है।

इस सब तथ्यों के अध्ययन से स्पष्ट है कि लाडनूं तथा इसके आस-पास का क्षेत्र जैन धर्म की दोनों परम्पराओं का बड़ा केन्द्र था। क्योंकि लाडनूं के निकटवर्ती ग्राम ''सुदरासन' में एक खाती के मकान की नींव से जहाँ दिगम्बर परम्परा के दो तोरणों की तथा ग्राम कसूंभी से तीन पाषाण मूर्तियों की प्राप्ति हुई वहीं लाडनूं के ही निकटवर्ती ग्राम ''गौराऊ'' से सन् १८८५-८६ में एक खेत में श्वेताम्बर जैन परम्परा की तीन पाषाण बड़ी प्रतिमायें तथा पचासों धातु की अनेक तीर्थंकर प्रतिमायें, पूजन पात्र सिंहासन आदि प्राप्त हुए हैं। इनमें भी पाषाण की मूल नायक प्रतिमा भगवान् शान्तिनाथ की ही है।

लाडनूं के दिगम्बर और श्वेताम्बर मन्दिरों एवं गौराऊ ग्राम—इन तीनों स्थान की तीर्थंकर शान्तिनाथ की मूलनायक प्रतिमाओं के अध्ययन से ऐसा जान पड़ता है कि यह सम्पूर्ण लाडनूं क्षेत्र प्राचीनकाल में जैन धर्म के सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ से सम्बन्धित दोनों परम्पराओं का कोई विशेष एवं बृहद् जैन तीर्थ रहा है।

लाडनूं के लम्बे इतिहास में अनेक उतार-चढ़ाव आये किन्तु यहाँ के निवासियों के मन में अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक विरासत के प्रति सदा से जो लगाव रहा है उसे कभी कोई किञ्चित् भी क्षति नहीं पहुँचा सका। यहाँ के नागरिक अपनी इन अमूल्य

Scanned with CamScanner

परम्पराओं के संरक्षण और विकास के प्रति सदा जागरूक रहते हैं। यद्यपि यह बहुत बड़ा नगर नहीं है किन्तु जितनी अधिक विविध रूपों में सार्वजनिक कल्याणकारी सेवायें यहाँ के उदारचेता नागरिकों द्वारा संचालित हैं ऐसी अन्यत्र कम ही देखने को मिलती हैं। ये सब यहाँ के नागरिकों की धन-वैभव की समृद्धि को तो प्रकट करता ही है साथ ही हृदय की उदारता और विशालता की भी सूचक हैं। इन सबको देखने से भी लगता है कि निश्चित ही यह पुण्य भूमि है।

श्री दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नगर लाडनूं में पुरातात्त्विक महत्त्व के अनेक हिन्दू एवं जैन मंदिर तथा मूर्तियाँ हैं। किन्तु जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र गगनचुम्बी शिखर युक्त दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर अपनी प्राचीनता और भव्यता के कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसमें अनेक कलापूर्ण प्राचीन जिन प्रतिमायें, सरस्वती, आराधिका एवं विद्या-देवियों की मूर्तियाँ, तोरण, स्तम्भलेख, पूजनपात्र तथा मूर्ति एवं स्थापत्य कला के अनेक उदाहरण तथा सैकड़ों हस्तलिखित प्राचीन जैन-ग्रन्थों से युक्त शास्त्र भण्डार विद्यमान हैं। मूर्ति एवं स्तम्भ लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि यहाँ अनेक आचार्यों, मुनियों एवं भट्टारकों का मूर्तियाँ प्रतिष्ठित कराने, उनके संरक्षण एवं शास्त्र भण्डार को समृद्ध बनाने में महनीय योगदान रहा है। यद्यपि उच्चशिखर युक्त वर्तमान मन्दिर बहुत प्राचीन नहीं है किन्तु यह मंदिर अपने भीतर श्री शान्तिनाथ जिनालय नामक एक प्राचीन मूल मन्दिर समाहित किये सुशोभित है। तलघर वाला यह प्राचीन मूल मंदिर मार्ग-भूमि की सतह से लगभग १० फुट नीचे स्थित है। इसमें प्रवेश के दो द्वार हैं। मंदिर में प्रवेश करते ही चौक के

Scanned with CamScanner

दाहिनी ओर प्रथम द्वार है तथा दूसरा द्वार ऊपर मध्य की वेदी के सामने दायीं ओर से कुछ सीढ़ियाँ उतरने के बाद है।

जनश्रुति के अनुसार तलघर वाला मन्दिर कभी भूगर्भ में टीले के रूप में था। बाद में खुदाई करके चारों ओर से मिट्टी हटाकर इसे प्रकाश में लाया गया और इसका मूल स्वरूप सुरक्षित रखते हुए जीर्णोद्धार किया गया। इसे मध्य में यथावत् सुरक्षित रखते हुए बाद में इसके चारों ओर तथा ऊपर वर्तमान बृहद् जिनालय का निर्माण हुआ। इसके अन्तर्गत चौक के सामने एक तथा ऊपरी हाल में पांच वेदियाँ समयानुसार निर्मित हुईं। ऊपरी हाल की बड़ी-वेदी में प्रतिष्ठित कलापूर्ण भव्य सरस्वती मूर्ति की महत्ता को देखते हुए १९८० में श्री नथमल जी सेठी ने तलघर में एक लघु वेदी बनवाकर सरस्वती, आराधिका एवं विद्यादेवियों की मूर्तियाँ उसमें प्रतिष्ठित कीं।

इस मंदिर में नवीन मूर्तियों की अपेक्षा प्राचीन मूर्तियों की ही अधिकता है। इन प्राचीन मूर्तियों तथा विविध पुरातात्त्विक तथ्यों से ऐसा लगता है कि प्राचीन काल में यहाँ अनेक जैन मन्दिरों से युक्त बड़ा जैन तीर्थ रहा है, जो काल के थपेड़ों के कारण अथवा अन्य कारणों से ध्वस्त हो गया हो। यही कारण है कि मकान बनाने हेतु नींव तथा कुण्ड आदि की खुदाई में अनेक मूर्तियाँ एवं पूजनपात्र आदि बराबर प्राप्त होते रहे हैं। तलघर स्थित प्राचीन मंदिर में अनेक स्तम्भलेख एवं मूर्तिलेख भी हैं, जिनका विवरण इसी पुस्तक में यथास्थान दिया गया है। भगवान् शान्तिनाथ की वेदी के भीतर और बाहर की छत पर नृत्य आदि विविध मुद्राओं में स्त्री-पुरुषों एवं देवी-देवताओं के अंकन युक्त बड़े-बड़े कलापूर्ण पाषाणों को देखने से लगता है कि ये कभी इस प्राचीन मूल मंदिर की दीवालों पर सुशोभित रहे होंगे। इसी बड़े मंदिर में अनेक जिन प्रतिमायें चिह्न एवं लेख रहित और कुछ जीर्ण-शीर्ण अवस्था में भी विद्यमान हैं। यहाँ की छतों, दरवाजों एवं बारियों आदि में सूक्ष्म नक्काशी का कार्य दर्शनीय है।

इस प्रकार जैन संस्कृति की अमूल्य धरोहर के रूप में विद्यमान इस मंदिर को प्रयत्न करने पर देश के प्रमुख दर्शनीय स्थलों की श्रेणी में लाया जा सकता है। यहाँ प्रस्तुत है लाडनूं के इस गौरवपूर्ण श्री दिगम्बर जैन बड़े मन्दिर के कला वैभव की झांकी—

Scanned with CamScanner

भगवान् शान्तिनाथ की मनोहारी मूर्ति एवं परिकर तोरण

भगवान् शान्तिनाथ

लाडनूं नगर का यह दिगम्बर जैन मन्दिर मूर्तिकला की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। इसमें अनेक भव्य एवं प्राचीन जिन प्रतिमायें, देवी प्रतिमायें, तोरण तथा अनेक स्तम्भ एवं मूर्ति लेख हैं जो जैन कला, इतिहास एवं संस्कृति की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसी मन्दिर के तलघर की मध्य वेदी में कलापूर्ण तोरण द्वार युक्त सफेद संगमरमर पाषाण (९४ × ७० सेण्टीमीटर माप) की यह भव्य पद्मासन प्रतिमा प्रतिष्ठित है। यद्यपि इस मूर्ति पर चिन्ह नहीं है किन्तु प्राचीन मन्दिर के मुख्य द्वार के ऊपर अंकित लेख के आधार पर यह प्रतिमा सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ की मानी जाती है तथा यह इस मन्दिर की मूल प्रतिमा सिद्ध होती है। तोरण और प्रस्तुत मूर्ति एक दूसरे के पूरक हैं अतः तोरण पर उल्लिखित लेख के आधार पर इसका समय सं० ११३६ माना गया है। वैसे प्रस्तुत मूर्ति के चरणों के पास एक लेख था किन्तु वह पूर्णतया घिस चुका है। मात्र दो-चार अस्पष्ट अक्षर ही अवशिष्ट हैं।

इस मूर्ति की सम्पूर्ण मुख-मुद्रा शान्ति और दया से आप्लावित है। इसमें आध्यात्मिक रस का संचार इतना उमड़ता दिखलाई पड़ता है कि मानों वह पाषाण को भेद कर फूट पड़ेगा। इसके मुख पर सदा वर्तमान मन्द-मुस्कान दर्शकों के मन में अपूर्व प्रसन्नता एवं आकर्षण उत्पन्न करती है। इसके दर्शन से दर्शक के मुख से ये भाव अपने आप प्रगट हो जाते हैं—

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य, देव! त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभाषते मे, संसारवारिधिरयं चुलुक प्रमाणम्॥

वस्तुतः इस मूर्ति में व्यक्ति को अपने अध्यात्म के कल्पनापरक रूप का दर्शन होता है। यह यथार्थ है कि मानव को अध्यात्म-रस का अनुभव या तो स्वानुभव में होता है अथवा प्रशान्त छवि वाली वीतरागी मूर्ति में प्राप्त होता है और इसीलिए वह अपने आराध्य के प्रति पूजा, भक्ति-आराधना, तन्मयता, समर्पण-भाव प्रकट करके उस सदृश बनने की प्रेरणा ग्रहण करता है। इस मूर्ति को देखकर किसी कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ सहज ही याद आ जाती हैं—

"प्राणों का संचार हो गया, मानो जड़ पाषाण में।
पलक प्रतिमायें डूबी हैं किसी अलौकिक ध्यान में॥"

कलात्मक परिकर तोरण

इस दिगम्बर जैन बड़े मन्दिर की कला का सबसे उत्कृष्ट तथा अद्वितीय उदाहरण सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ की प्रतिमा वाला यह परिकर तोरण है, जो मन्दिर के नीचे वाली प्राचीन बड़ी बेदी में स्थित है। सरस्वती की मूर्ति के बाद इस मन्दिर का सर्वाधिक आकर्षक अमूल्य निधि के रूप में उत्तम सफेद संगमरमर पाषाण पर निर्मित यह तोरण द्वार है, जिसका प्रत्येक कोना शिल्प से भरा हुआ है। इसकी सूक्ष्म और सजीव कला देखकर लगता है कि शिल्पकार की कुशल छेनी ने अपनी सीधी-सादी किन्तु अभिव्यक्ति पूर्ण भाषा में जैनकला का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर अपनी साधना को सफल बनाया है।

इस तोरण के दोनों ओर के स्तम्भों की आधार पीठिकाओं में बीचों-बीच पद्मासन मुद्रा में सरस्वती की दो चतुर्भुजी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। प्रत्येक के चारों हाथों में श्वेत कमल, शास्त्र की लम्बी पाण्डुलिपि, अक्ष-माला तथा कमण्डलु (कुण्डिका या जलकुम्भ) हैं। दोनों ही विविध वस्त्रा-भूषणों से अलंकृत हैं। इन्हीं देवियों के नीचे मध्य में धर्मचक्र बना हुआ है। धर्मचक्र अभय और शान्ति का प्रतीक होता है इसीलिए प्रत्येक धर्म-चक्र को घेरे हुए दोनों तरफ दो-दो मृग बैठे हैं। देवियों के दोनों ओर सामने सूँढ़ उठाये हाथी खड़े हैं। इन्हीं के बगल से प्रत्येक पीठिका पर बलिष्ठ सिंह खड़े हैं। बायीं पीठिका के भीतरी भाग में अंकित सिंह के आगे लम्बी दाढ़ी युक्त पुरुष दोनों हाथों में शस्त्र पकड़े खड़ा है। तोरण के दोनों ओर कलापूर्ण स्तम्भों में कुल २३-२३ जिन प्रतिमायें अंकित हैं। दोनों स्तम्भों के शीर्षभाग तथा नीचे के भाग में वेदिकायें बनी हैं, जिनके बीच में एक-एक पद्मासन तथा इन्हीं के दोनों ओर खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ विराजमान हैं। दोनों खम्भों के मध्य में भगवान् पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमायें हैं। बायीं ओर की मूर्ति सप्तफणी तथा दायीं ओर की मूर्ति पंचफणी है। इन्हीं दोनों मूर्तियों के दोनों ओर पंक्तिबद्ध रूप से अलग-अलग खण्डों में चार-चार पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमायें हैं।

पार्श्वनाथ की मूर्ति के ऊपरी भाग में भी दोनों खम्भों पर वेदिकायें बनीं हैं। इनमें भी पूर्वोक्त प्रकार से तीर्थंकर प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं। इन्हीं वेदिकाओं के दोनों ओर प्रत्येक खम्भे पर हाथी के सूँढ़ युक्त शीर्ष भाग पर पीछे के पैरों के आधार पर स्थित तथा आगे के पैर पेट के बगल में सटाये दो-दो बलिष्ठ घोड़े तत्पर खड़े हैं। स्तम्भ के शीर्ष भाग पर बनी

Scanned with CamScanner

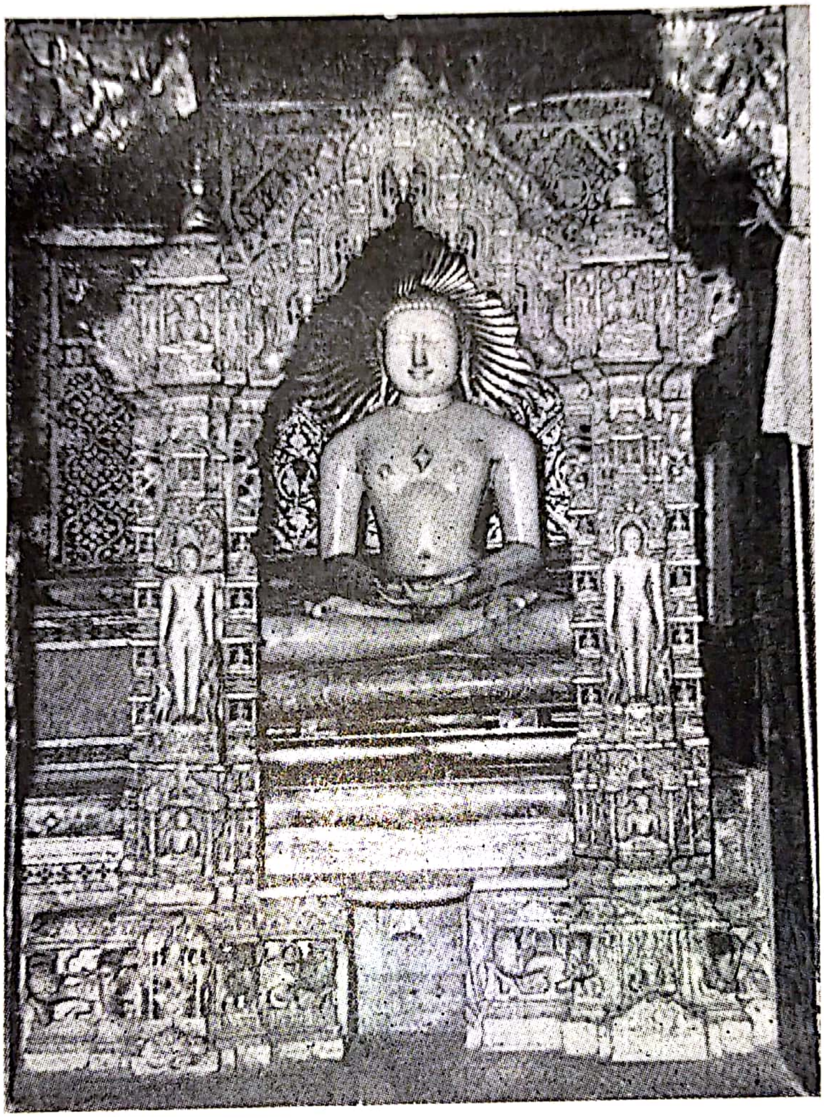

भगवान् शान्तिनाथ की मनोहारी मूर्ति
एवं कलापूर्ण परिकर तोरणद्वार

Scanned with CamScanner

कलापूर्ण मण्डप छत

सुन्दर कलापूर्ण यह छत उस वेदी के ऊपरी मण्डप का हिस्सा है जिस वेदी में तोरण युक्त भगवान् शान्तिनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित है। विविध बेल-बूटे, नक्काशी एवं विभिन्न मुद्राओं में चारों ओर सामूहिक रूपमें नृत्य करते हुए स्त्री-पुरुषों के समूह इसमें प्रदर्शित हैं।

Scanned with CamScanner

प्रत्येक वेदिकाओं के दोनों ओर मुँह खोले दो-दो मकराकृतियाँ बनी हैं। स्तम्भ-शीर्षकों और निचले सिरदल या घुमावदार (अर्धवृत्ताकार) तोरण को मिलाने हेतु ये मकरमुख अंकित हैं। दोनों ओर के बाहरी मकरमुखों से शस्त्र लिए पुरुषाकृति में कोई देव निकल रहा है तथा भीतरी मकर-मुखों से कलापूर्ण झालरों, वेदिकाओं युक्त तोरण का नीचे वाला भाग निकलता हुआ दिखाया गया है। इस भाग में ऊपर-नीचे शिखरयुक्त पाँच वेदिकायें भी अंकित हैं, जिनमें जिन बिम्ब प्रतिष्ठित हैं।

इसी तोरण के सबसे ऊपरी भाग में दोनों ओर सुसज्जित कई इन्द्र पंक्तिबद्ध रूप में जल कलश एक दूसरे को आगे बढ़ाते हुए खड़े हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्रगण नीचे क्षीरसागर से जल अपने घड़ों में भरकर ऊपर सुमेरु पर्वत पर विराजमान जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक कर रहे हों। इस तोरण में भी दोनों ओर के स्तम्भों के शीर्ष भाग से लेकर ऊपरी मध्य भाग क्रमशः ऊँचा है तथा तोरण के शीर्ष भाग में बीचों बीच जिनबिम्ब युक्त वेदिका भी बनी है। बायीं ओर के इन्द्रों की मूर्तियाँ कुछ खण्डित हैं किन्तु दायीं ओर के इन्द्रों को स्पष्ट देखा जा सकता है। दोनों ओर के इन्द्रों की इस पंक्ति के नीचे वाली पंक्ति में जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक देखने के लिए विविध वाद्य यन्त्र लिए नृत्य मुद्रा में सुसज्जित देवगण भी पंक्तिबद्ध रूप में ऊपर की ओर जाते हुए अंकित हैं।

इस तरह सम्पूर्ण तोरण कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण उदाहरण है। इस तोरण में नीचे दायीं ओर की पीठिका पर तथा ऊपरी स्तम्भ के शीर्ष भाग पर लेख इस प्रकार हैं—

१—नीचे की पीठिका का लेख—सं० ११३६ असाढ़ सुदी–८ माथुर संघे आचार्य श्री गुणकीर्ति भक्त साहु देल्हसुत श्रेष्ठी बहुदेव सर्वे देवाभ्यां शान्तिनाथ प्रतिमाकारिता।

२—ऊपरी भाग का लेख सं० १२१९ वैसाख सुदी ७ साधु सर्वदेव पत्नी साव विद्या तोरणं श्रेयसे कारितमिदं।

इस एक ही तोरण पर भिन्न-भिन्न काल के दो लेखों से ज्ञात होता है कि वर्तमान में प्रतिष्ठित भगवान् शान्तिनाथ की मूर्ति तथा प्रस्तुत तोरणद्वार माथुर संघ के आचार्य श्री गुणकीर्ति के भक्त तथा देल्ह के पुत्र सेठ बहुदेव ने बनवाकर प्रतिष्ठित किये थे। किन्तु ऐसा लगता है कि सम्भवतः किसी कारण से इसकी पुनः प्रतिष्ठा की आवश्यकता हुई हो और लगभग तेरासी वर्ष बाद इसे सर्वदेव की पत्नी ने अपने कल्याणार्थ इसकी पुनः प्रतिष्ठा की।

Scanned with CamScanner

सुखाश्रम का तोरण

उपर्युक्त तोरण की भव्य कला से प्रभावित हो लाडनूं के धार्मिक श्रावक सेठ श्री सुखदेवजी के सुपुत्रों ने ३० वर्ष पूर्व ई० सन् १९५८ में निर्मित श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर [सुखदेव आश्रम] में भगवान् आदिनाथ की अष्टधातु की पद्मासन मूल प्रतिमा के लिए इसी तोरण की प्रतिकृति बनवाकर प्रतिष्ठित करवाया। प्राचीन तोरण के आधार पर यह नवीन तोरण के निर्माता कलाकार भी उसकी प्रतिकृति बनाने में पूर्ण सफल हुए हैं। दोनों में अन्तर मात्र नीचे की पीठिका के मूर्तांकन में है। जहाँ प्राचीन तोरण में दोनों स्तम्भों की पीठिकाओं में सरस्वती की मूर्तियाँ हैं वहाँ नवीन तोरण में भगवान् ऋषभदेव के शासन यक्ष-यक्षिणी बने हुए हैं। यह बीसवीं शती का अनुपम कलापूर्ण परिकर तोरण है।

तोरण युक्त भगवान् अजितनाथ की प्रतिमा

इस मंदिर के तलघर की मध्य वेदी में ही द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ की प्रतिमा वाला परिकर तोरण और उसमें विराजित यह बहुत ही भव्य मूर्ति है। यह प्रतिमा सफेद संगमरमर से निर्मित (७४ × ६० से० मी०) है। लेख और चिन्ह सहित इस मूर्ति में भी वे सभी विशेषतायें हैं जो अन्य सभी विशिष्ट मूर्तियों में हैं। पादपीठ भी अत्यन्त अलंकृत है। इस पर अस्पष्ट रूप से हाथी का चिन्ह अंकित है। इसका लेख इस प्रकार है—
"सं० १२०९ वैसाख सुदी १३ श्री माथुर संघे जिमाजिताच्चर्स्य सुतः यणेति लक्ष्मीधरो नागकुमार पुत्रः। अनंतकीर्तिह्वथसूरिणावं प्रतिष्ठिता श्रेष्ठ फलाप्ति। हेतो। मंगलमस्तु ॥

इस मूर्ति का भव्य तोरण भी कलात्मक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। लाडनूं के समीप ही सुदरासन नामक ग्राम में खुदाई के समय एक जैसे दो तोरण प्राप्त हुए थे। इनमें से एक तोरण कुचामन सिटी के नवीन नशियाजी वाले दि० जैन मंदिर की प्रमुख वेदी की भव्य मूर्ति के साथ प्रतिष्ठित कर दिया गया है तथा दूसरा तोरण इस मूर्ति के साथ स्थापित है।

प्रस्तुत तोरण के दोनों स्तम्भों पर बाईस-बाईस इंच ऊँची खड्गासन जिन प्रतिमायें हैं। प्रत्येक मूर्ति के चरणों के साथ पादपीठ पर ही दो-दो चँवरधारी भावपूर्ण मुद्रा में खड़े चँवर ढोल रहे हैं। दायीं ओर वाले खम्बे पर जिन प्रतिमा के नीचे पादपीठ के सामने वाले भाग में तीर्थंकर की शासन यक्षी 'मनोवेगा' की मूर्ति अंकित है इससे यह प्रतिमा छठें तीर्थंकर 'पद्मप्रभ' की सिद्ध होती है। देवी दोनों ओर के ऊपरी हाथों में अस्त्र

Scanned with CamScanner

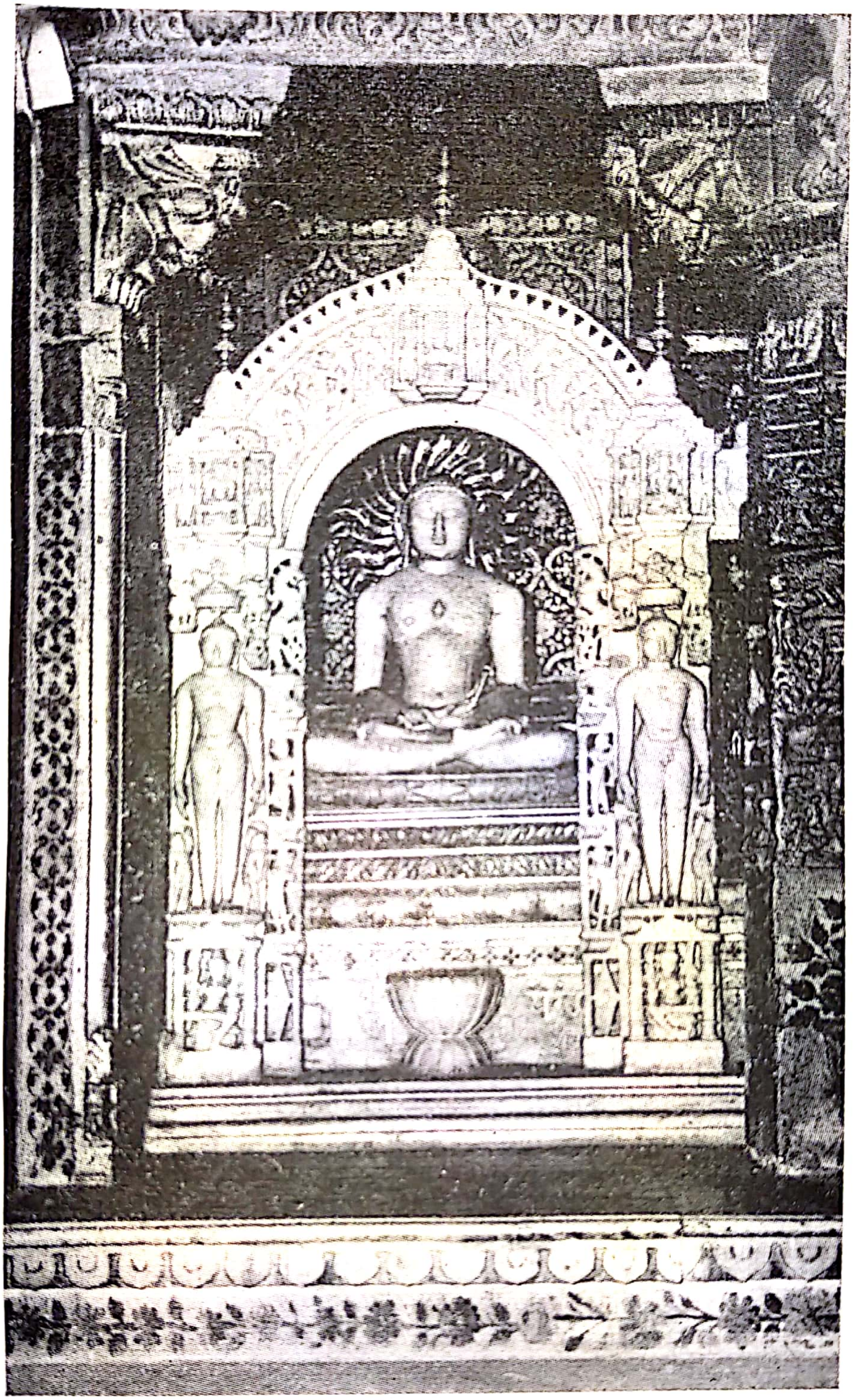

तोरणयुक्त भगवान् अजितनाथ की प्रतिमा

Scanned with CamScanner

प्राचीन मंदिर (तलघर) के चौक का प्रवेशद्वार

Scanned with CamScanner

धारण किये है। नीचे का दायाँ हाथ वरद मुद्रा में है। बायें हाथ में फल या कलश की तरह कोई बड़ी सी मांगलिक वस्तु ग्रहण किये हैं। देवी के पादपीठ में अश्व का चिन्ह अङ्कित है। इससे देवी की पहचान मनोवेगा के रूप में की गई।

इसी तरह बायीं ओर के दूसरे तोरण स्तम्भ में तीर्थंकर प्रतिमा की पादपीठ में सरस्वती की पद्मासन मुद्रा में मूर्ति अंकित है। ऊपरी दायें हाथ में कमल के फूल का गुच्छा, नीचे का हाथ वरद मुद्रा में माला युक्त है। बायीं ओर के ऊपरी हाथ में पुस्तक और नीचे के हाथ में कलश है। पादपीठ में देवी का वाहन मयूर अंकित है। दोनों स्तम्भों की देवी मूर्तियाँ सुसज्जित और आकर्षक हैं।

खड्गासन मुद्रा में अंकित उपर्युक्त दोनों तीर्थङ्कर प्रतिमाओं के ऊपर छत्र बने हुए हैं। इन छत्रों के ऊपर बीचों-बीच शंख बजाते हुए बौने आकार वाले शंखपाल देव हैं। छत्र के दोनों ओर अपनी सूँढ में कलश लिए हुए हाथी हैं। प्रत्येक पर अंकुश लिए हुए सावधानी से महावत बैठे हुए हैं। तीर्थङ्कर मूर्ति के मुख के बगल में हाथ में माला लिए हुए आकाश-चारी विद्याधर दिखाए गये हैं। दोनों तोरण स्तम्भों को भीतर की ओर सुसज्जित करने की दृष्टि से तीर्थङ्कर प्रतिमाओं के एक तरफ गज और व्याल तथा देवी-देवता की मूर्तियों सहित विविध बेलबूटों को अङ्कित किया गया है।

स्तम्भ का ऊपरी भाग चित्र तोरण को उल्टे अर्द्धचन्द्राकार स्थिति में दोनों स्तम्भों पर आधारित किया गया है। इसमें दोनों किनारों पर तथा मध्य में एक-एक रथिकायें (वेदिकायें) बनीं हुई हैं। इन तीनों रथिकाओं में तीन-तीन जिन प्रतिमायें हैं। प्रत्येक में मध्य वाली बड़ी प्रतिमा पद्मासन तथा इनके दायीं-बायीं ओर की जिन प्रतिमायें खड्गासन हैं। तीनों रथिकायें को शिखर युक्त दिखाया गया है जिन पर वर्तमान में स्वर्ण कलशारोहण कर दिया गया है। इस ऊपर भाग का एक और आकर्षण यह है कि दोनों ओर की वेदिकाओं के बगल से दो मकराकृतियों के बृहद् मुख से भावपूर्ण नृत्यमुद्राओं में निकलते हुए विद्याधरों, देवी-देवताओं आदि खेचरों का समूह है, जो विविध वाद्ययन्त्र, फल एवं पुष्पहार भी लिए हुए हैं। साथ ही सभी विभिन्न वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। ये सभी दोनों ओर से बीच की वेदिका की ओर नृत्य करते हुए जा रहे हैं। ऐसा लगता है भगवान् के जन्माभिषेक के समय वन्दना हेतु नाचते-गाते-बजाते हुए अपनी भक्ति प्रकट कर रहे हों।

Scanned with CamScanner

जैन सरस्वती की अद्वितीय भव्यमूर्ति

इस मन्दिर के तलघर में दाहिनी ओर श्री नथमल जी सेठी द्वारा नवनिर्मित वेदी में स्थित सरस्वती की यह मूर्ति कलात्मकता, भव्यता एवं सौम्यता आदि गुणों में अद्वितीय मूर्ति कही जा सकती है। किन्तु इसके विषय में लोगों को बहुत ही कम जानकारी है। मूर्तिकला के क्षेत्र में जैन सरस्वती की विभिन्न लक्षणों एवं मुद्राओं में प्राचीन से प्राचीन और अर्वाचीन से अर्वाचीन मूर्तियों के उदाहरण हैं, किन्तु अभी तक पल्लू (बीकानेर) से प्राप्त सरस्वती की दानों प्रतिमायें ही प्रसिद्ध हैं। इनमें से एक बीकानेर के संग्रहालय में तथा दूसरी राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में संग्रहीत हैं। किन्तु लाडनूं के इस मन्दिर में प्रतिष्ठित जैन सरस्वती मूर्ति की भावपूर्ण मोहक मुखमुद्रा एवं कलाकार की अद्‌भुत कला का संयोजन देखकर दर्शक अपने आपको धन्य मान लेता है और उसके मुख से यही वाक्य निकलता है कि यदि इस मूर्ति को प्रचारित किया जाता तो इसकी गणना उत्कृष्ट कला के अन्यतम उदाहरणों के रूप में होती।

भारतीय कला धार्मिकता से ओत-प्रोत है। उसमें आध्यात्मिकता की गहरी छाप है। श्रेष्ठ मूर्तियों के जितने उदाहरण देखते हैं, सभी में एक पवित्र लावण्य और निर्मलधारा प्रवाहित होती दिखाई देती है। यही कारण है कि जब कभी भारतीय शिल्पकारों ने नारी को अपने शिल्प का विषय बनाया, तब अधिकतर उसे मां के रूप में प्रदर्शित किया।

वस्तुतः भारतीय देवियों में सरस्वती को सदा माता का सच्चा स्वरूप प्रदान किया जाता है। जैनधर्म में जिनवाणी, वाग्देवी तथा श्रुतदेवता के रूप में सरस्वती की मान्यता प्राचीनकाल से ही प्रचलित है। आगमिक ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सरस्वती को उसका प्रतीक बनाया गया और उसकी उपासना प्रारम्भ हुई तथा पवित्र आगमिक ज्ञान को प्रतीकात्मक रूप देने के लिए ज्ञान (श्रुत) की देवी सरस्वती की प्रतिमा बनाई गई। ज्ञान की ज्योति सब ओर प्रकाश देती है अतः सरस्वती भी ज्ञान रूपी प्रकाश की देवी है। सरस्वती का श्वेत रूप जीवन की पवित्रता का द्योतक है।

आचार्य हेमचन्द्र ने सरस्वती के वाक्, ब्राह्मी, भारती, गौ, गी, वाणी भाषा और श्रुतदेवी–ये नाम बताये हैं। इन नामों के अनुरूप गुणों का संयोजन करके मूर्तिकारों ने सरस्वती की विभिन्न मुद्राओं में मूर्तियाँ बनाईं। जैन कला में सोलह विद्या देवियों के अंकन की भी परम्परा है। पर श्रुत-

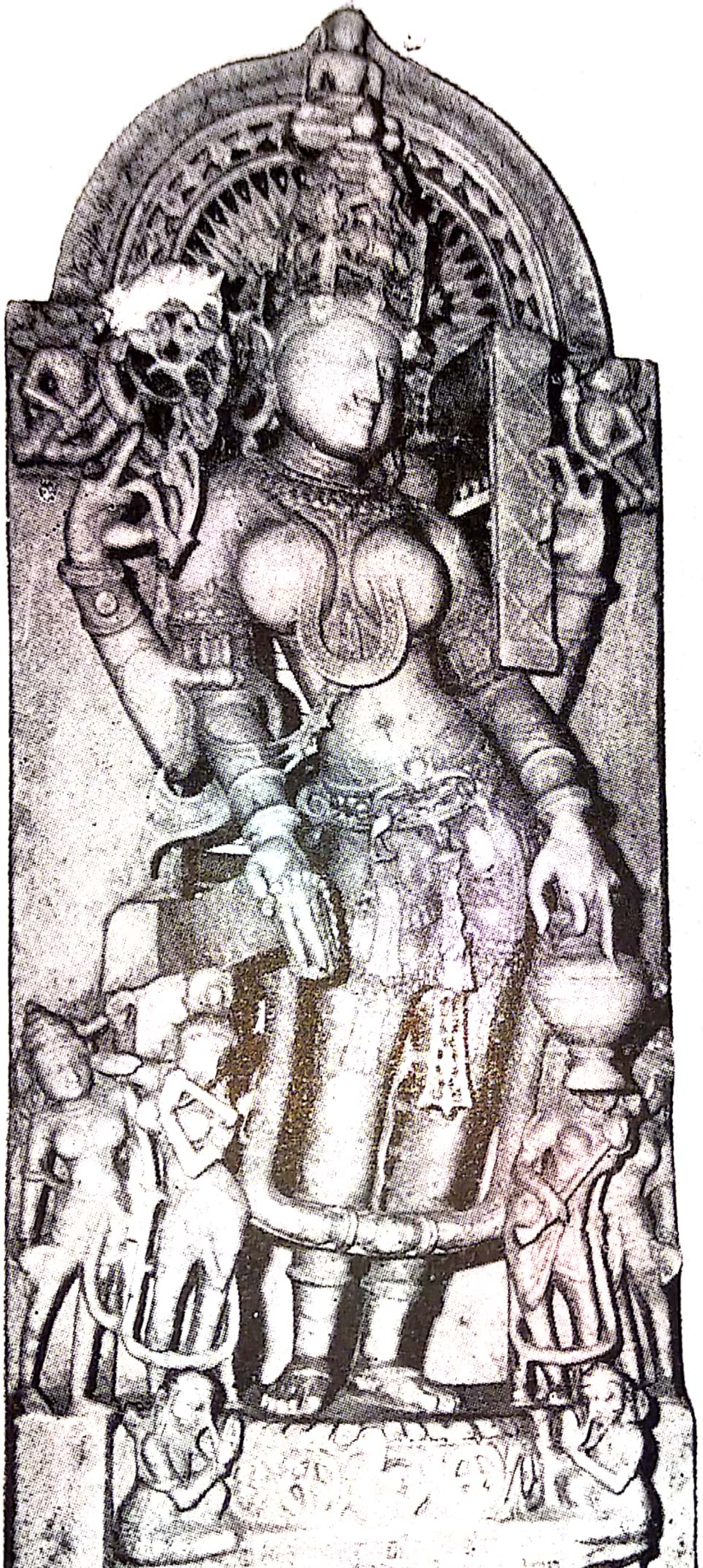

जैन सरस्वती

Scanned with CamScanner

श्री नथमल जी सेठी द्वारा सरस्वती की नव निर्मित वेदो इसमें सोलह विद्या देवियों एवं आराधिका की मूर्ति भी प्रतिष्ठित हैं।

देवी के रूप में अलग से सरस्वती की मूर्ति बनाने की परम्परा काफी प्राचीन प्रतीत होती है। चौबीसवें तीर्थंकर महावीर की यक्षी सिद्धायिका के निरूपण में भी पुस्तक और वीणा के अंकन में सरस्वती का प्रभाव देखा जा सकता है। जैन परम्परा की सरस्वती की मूर्तियों के अब तक ज्ञात सबसे प्राचीन उदाहरणों में मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त लेखयुक्त मूर्ति है जो कुषाणकालीन मानी जाती है।

लाडनूं के इस मन्दिर में प्रतिष्ठित सरस्वती की मूर्ति चूँकि बारहवीं शती के मध्य काल की है किन्तु ज्ञान और शिल्प को प्रभावी सौंदर्य की एक गहरी संवेदना के साथ मिश्रित करके इस मूर्ति का अंकन किया गया लगता है। श्वेत संगमरमर के एक बड़े पाषाणफलक पर उत्कीर्ण साढ़े तीन फुट ऊँची यह खड्गासन मूर्ति दर्शकों के मन को आकर्षित करती है। सरस्वती का यह श्वेत रूप जीवन की पवित्रता का द्योतक है। भगवती सरस्वती पद्मपीठ पर त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हैं। इस मुद्रा में तनिक भंगिमा के साथ अंगयष्टि अनुपम सौन्दर्य की प्रतीक है। अत्यधिक प्रशान्त मुख तथा पीछे अनेक किरणों युक्त आलंकारिक प्रभामण्डल—सम्पूर्ण आकृति में ऐक्य, निर्मलता और ओज है। शिर के ऊपर का अलंकार खचित चौकोर एवं ऊँचा करण्डमुकुट (शिरोभूषण) धारण किये है जो कि नुकीला एवं शिखरयुक्त है, जिसमें जगह-जगह मोती आदि जड़े हुए प्रदर्शित हैं। प्रभामण्डल के ऊपर क्रमशः दो अलंकृत अर्द्धवृत्ताकार घेरा है। पाषाण-फलक के अग्रभाग में बीचोबीच पद्मासन एवं ध्यानस्थ मुखमुद्रा में एक लघु जिन प्रतिमा है। देवी के ऊपरी दोनों हाथों के पास दोनों कोनों पर उड़ते हुए दो मालाधर उत्कीर्ण हैं, जो अपने हाथों में माला सम्हाले हुए हैं। इनकी भक्तिभावपूर्ण मुद्रा से ऐसा प्रतीत होता है मानों देवी की पूजार्थ आकाश से अभी-अभी अवतरित हुए हों।

देवी के दोनों कानों के ऊपरी भाग में तीन लड़ियों वाले झुमके तथा नीचे के भाग में गुंथे हुए बड़े-बड़े कुण्डल हैं। चूंकि करण्डमुकुट से शिर ढका हुआ है फिर भी कानों के आस-पास की केशसज्जा बड़ी ही सुन्दर है। शिर के पीछे बायों ओर केशराशि बड़े से जूड़े के रूप में व्यवस्थित है। गले में अतिसेर युक्त ग्रैवेयक एवं प्रलम्बहार आदि विविध हार, माला आदि कण्ठाभरण धारण किये हैं। वक्ष पर पाँच लड़ियों वाला मुक्ताहार दोनों पुष्ट स्तनों के ऊपर से गहरी नाभि के पास तक लटक रहा है; जिसकी बगली फुन्दे दायीं ओर से पीछे की तरफ झूलते हुए

Scanned with CamScanner

दर्शाये गये हैं। कटिभाग में अलंकृत चौड़ा कटिबन्द तथा मोतियों को जालयुक्त मेखला [करधनी] धारण किये हुए हैं, जिससे बिना तहों वाला अधोवस्त्र [धोती] आबद्ध है। सामने कमर में जहाँ अधोवस्त्र कसा हुआ है उसके घुमावदार दो फुंदने दोनों ओर बड़ी बारीकी से दिखाये गये हैं। अधोवस्त्र कमर से वनमाला के पास तक अलग–अलग दोनों पैरों पर कई लहरियों के रूप में उत्कीर्ण किया गया है। दोनों जंघाओं पर मोतियों की लड़ियों, झालरों एवं सुनियोजित अलंकृत लटकनों को देखने से उस समय में प्रचलित नारी के विविध आभूषणों की समृद्ध परम्परा का ज्ञान होता है।

देवी की चार भुजायें हैं, जिनमें मंगल सूचक उपकरण हैं। सरस्वती के चार हाथों की कल्पना भी जैन आगमों के प्रथमानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग और करणानुयोग रूप चार अनुयोगों के आधार पर की गई है। बायीं ओर के ऊपरी हाथ में रेशमी डोर से कलात्मक ढंग से बँधे हुए ताड़पत्रीय शास्त्र की लम्बी पाण्डुलिपि है जो इस बात का प्रतीक है कि वस्तुतः शास्त्रों के स्वाध्याय से ही ज्ञान की उपासना होती है। दूसरे हाथ में कमण्डलु की तरह कलश, जलकुम्भ या कुण्डिका है। कुम्भ ज्ञान के कोष का प्रतीक है। सरस्वती विद्या की देवी होने के कारण कुम्भ को भी देवी का प्रतीक माना गया। दाहिने ओर के ऊपरी हाथ में अच्छी तरह गुंथा हुआ टहनीयुक्त एक बड़ा सा पद्म गुच्छक है। खिले हुए श्वेतकमल का यह पद्मगुच्छक विद्या की पवित्रता, सौरभता, सार्वभौमिकता तथा प्रसन्नता का प्रतीक है। सरस्वती का जहाँ कहीं भी निवास होता है वहाँ पर ये गुण स्वयमेव वर्तमान रहते है। इसी पद्मगुच्छक (हंसयुक्त मृणाल-दण्ड) के मध्य में सामने परस्पर एक दूसरे को देखते हुए हंस युगल उत्कीर्ण हैं। जप-ध्यान के प्रसाद से ही ज्ञान की साधना होती है अतः उसके प्रतीक के रूप में दायीं ओर के नीचे वाले हाथ में अक्षमाला उत्कीर्ण है। काल के प्रभाव से इस माला के कुछ मनके (दाने) टूट चुके हैं।

चारों भुजायें विविध आभूषणों से अलंकृत हैं। इनमें चौड़े एवं तिकोने कलात्मक भुजबन्ध (बाजूबन्द) तथा कलाई में मोती जटित चूड़ियाँ कंगन एवं कलाईबन्द आदि आभूषण यथेष्ट मात्रा में हैं। हाथों की लम्बी-लम्बी पतली अंगुलियों में अंगूठियाँ प्रदर्शित है। पैरों में दो लड़ियों वाली पायलें तथा पैरों के अंगूठों एवं अंगुलियों में बिछुड़ीं बखूबी

Scanned with CamScanner

अंकित की गई हैं। कुशल मूर्तिकार ने कौशलयपूर्वक अच्छे से अच्छे छोटे-बड़े सभी प्रकार के आभूषणों के अंकन की ओर ध्यान देकर कला को अमरता प्रदान की है। ओष्ठ, वक्षस्थल, कटिप्रदेश आदि के अंकन में कलाकर ने बड़ी ही सूक्ष्मदृष्टि का परिचय दिया है।

देवी का गरिमामय हावभाव, कमनीय चेहरा तथा सुशिल्पित शरीर तत्कालीन स्त्री-सौन्दर्य को हमारी आँखों के सामने पूरी तरह प्रदर्शित करते हैं। मूर्तिकार के उत्साह और सुरुचि के पक्ष में जितना कहा जाय कम है। क्योंकि यह उस महान् शिल्पी की कृति है जिसका प्रयोजन था ज्ञान की सुन्दरतम मूर्ति को आकार प्रदान करना तथा दर्शकों की आँखों को उल्लास देना।

गोलाकार वेलबूटों से युक्त देवी की पादपीठ के नीचे बीचों-बीच देवी का चिह्न हंस बड़ी ही सावधान मुद्रा में उत्कीर्ण है। सभी पक्षियों में हंस को सबसे अधिक विवेकी पक्षी माना जाता है। बिना ज्ञान के विवेक दुर्लभ है, इसीलिए हंस को ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के चिन्ह के रूप में स्वीकार किया गया। पादपीठ के दोनों ओर अन्य दो-दो देवियाँ खड़ी हैं। दायें तथा बायें ओर आगे की देवियाँ क्रमशः बांसुरी एवं वीणा बजा रही हैं। दोनों ही त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हैं। शिर अनावृत्त हैं और केशसज्जा सुन्दर है। घुटनों से भी नीचे तक लटकती हुई वनमालायें दोनों को अपने में घेरे हुए हैं। दोनों ही समान रूप से विविध एवं पर्याप्त सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। इन्हीं देवियों के पार्श्व में नृत्यमुद्रा में चमर-धारी देवियाँ हैं। एक हाथ में चमर ढोल रहीं हैं तथा दूसरा हाथ कटि पर रखा हुआ है। ये दोनों भी काफी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। घुमाव-दार ऊँचा किरीट-मुकुट धारण किये हैं। मोतियों की माला, हार, कुण्डल, कंकण, भुजबंद तथा पैरों में पायल पहने हुए हैं। कटि में मोतियों की लड़ियों से साड़ी (धोती) कसी हुई अंकित है।

पादपीठ पर नीचे जहाँ हंस अंकित है उसके दायें कोने पर दाढ़ी युक्त पुरुष तथा बायें कोनेपर जूड़ा बाँधे स्त्री आकृति अंकित हैं। दोनों ही करबद्ध रूप में वन्दना की मुद्रा में बैठी हैं। दोनों के मुख पर सरस्वती के चरणों में अपना समर्पण भाव व्यक्त हो रहा है। इससे ऐसा लगता है कि ये इस मूर्ति के दान-दाता (निर्माता) पति-पत्नी रूप श्रावक युगल हैं। भारत में स्वतंत्र उदाहरण के रूप में जैन सरस्वती की जितनी भी खड्गासन मूर्तियाँ देखने में आयी हैं प्रायः सभी में इस तरह के श्रावक युगल प्रदर्शित किये गये हैं।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार परिकर युक्त सरस्वती की यह मूर्ति निःसंदेह विलक्षण आकार में तराशी गई एक उत्कृष्ट कलाकृति है। एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'कवि की जिह्वा में सरस्वती रहती है तो शिल्पी के हाथों में'—इसे ही चरितार्थ करने हेतु किसी अज्ञातनामा शिल्पी को सजावट के प्रेम ने देवी को विकसित कमलासन पर तराशने को विवश किया।

इस मूर्ति की अनेक विशेषताओं में से एक यह भी है कि पादपीठ पर उत्कीर्ण हंस के नीचे सामने वाले सपाट भाग में तीन पंक्तियों का स्पष्ट लेख है, जिसमें मूर्ति के प्रतिष्ठित होने का समय, दिगम्बर जैन परम्परा से सम्बद्ध माथुर संघ, दानदाता (निर्माता) आदि के विवरणों के साथ "सरस्वती" शब्द का उल्लेख है। जबकि इस प्रकार के अन्य उदाहरणों में शायद ही स्पष्ट और पूर्ण लेख उल्लिखित हों। लेख इस प्रकार है :—

संवत् १२१९ वैशाख सुदी ३, शुक्रे ॥ श्री माथुर संघे ॥
आचार्य श्री अनन्तकीर्ति भक्त-श्रेष्ठी बहुदेव पत्नी आशा
देवी सकुटुम्ब सरस्वतीम् प्रणमति ॥ शुभमस्तु ॥

इस लेख से ज्ञात होता है कि श्री माथुर संघ के आचार्य श्री अनन्तकीर्ति के भक्त श्रावक सेठ वासुदेव की पत्नी आशादेवी सपरिवार सरस्वती की सभक्ति वन्दना करती हैं। लेख के अन्त में सभी के कल्याण की कामना भी की गई है।

सोलह विद्या-देवियाँ

सरस्वती की मूर्ति के पास ही सफेद संगमरमर के एक ही प्राचीन पाषाणफलक पर अंकित सोलह विद्यादेवियों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। जैन परम्परा में इन विद्यादेवियों के अंकन की परम्परा 'सरस्वती' मूर्ति के अंकन की परम्परा के अतिरिक्त है। सरस्वती मूर्ति के विवरण के साथ ही सरस्वती के पर्यायवाची—वाक्, ब्राह्मी, भारती, गौ, गी, वाणी, भाषा, सरस्वती और श्रुतदेवी—ये नाम उल्लिखित किये गये हैं। इन्हीं नामों के आधार पर श्री बालचन्द जैन ने अपनी पुस्तक जैन प्रतिमा विज्ञान (पृष्ठ ५४) में लिखा है कि जैनों की विद्यादेवियाँ वस्तुतः अपने नाम के अनुसार वाणी की विभिन्न प्रकृतियों के कल्पित मूर्तरूप हैं।

विद्यादेवियों का स्वरूप बतलाते समय प्रायः सभी ग्रन्थों में उन्हें ज्ञान से संयुक्त बताया है। इन विद्यादेवियों की मूर्तियों की लोकप्रियता

Scanned with CamScanner

श्वेताम्बर स्थलों तक ही सीमित है'—अभी तक यह धारणा रही है किन्तु सोलह विद्यादेवियों के इस मूर्ताङ्कन से इस धारणा का निराकरण हो जाता है और यह उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि दिगम्बर परम्परा में भी इन विद्या देवियों की मूर्तियों का निर्माण होता रहा है।

ये विद्यादेवियाँ मूलतः तान्त्रिक देवियाँ हैं। अनेक विद्या-देवियों में से सोलह प्रमुख विद्या-देवियों की स्थायी सूची तैयार की गई है, जिन्हें महाविद्या कहा गया। १० वीं शती तक इनकी सूचो तैयार हो चुकी थी और उनकी लाक्षणिक विशेषतायें भी लगभग इसी समय निर्धारित हुईं। महाविद्याओं के निरूपण से सम्बन्धित प्रारम्भिक जैन ग्रन्थ बप्पभट्टिसूरि-कृत चतुर्विंशतिका [७४३-८३८ ई०] है।[२] सोलह विद्या-देवियों के नाम इस प्रकार हैं—१. रोहिणी, २. प्रज्ञप्ति, ३. वज्रश्रृंखला, ४. वज्रांकुशा, ५. जाम्बूनदा, ६. पुरुषदत्ता, ७. काली, ८. महाकाली, ९. गौरी, १०. गांधारी, ११. ज्वालामालिनी, १२. मानवी, १३. वैरोटी, १४. अच्युता, १५. मानसी और १६. महामानसी।

श्वेताम्बर परम्परा में इन विद्या-देवियों के नाम इस प्रकार हैं—१. रोहिणी, २. प्रज्ञप्ति, ३. वज्रश्रृंखला, ४. वज्रांकुशा, ५. चक्रेश्वरी या अप्रतिचक्रा, ६. नरदत्ता या पुरुषदत्ता, ७. काली या कालिका, ६. महा-काली, ९. गौरी, १० गान्धारी ११. सर्वास्थ महाज्वाला या ज्वाला १२. मानवी, १३. वैरोटया, १४. अच्छुप्ता, १५. मानसी एवं १६. महामानसी।

चौबीस तीर्थंकरों की पहचान के लिए जैसे उनके चिह्न के अंकन की परम्परा है साथ ही इनके पहचान का दूसरा साधन पादपीठ में अंकित शासन यक्ष-यक्षिणी भी हैं। किन्तु तीर्थंकर मूर्तियों के साथ उनके यक्ष-यक्षिणी के अंकन की परम्परा अधिक प्रचलित नहीं है। फिर भी तीर्थंकरों की इन निर्धारित शासन यक्षियों में से कुछ की तुलना उपर्युक्त विद्यादेवियों से करते हुए श्री बालचन्दजी ने लिखा है कि इन विद्यादेवियों में से प्रायः सभी को शासन यक्षियों की सूची में स्थान प्राप्त है, यद्यपि तीर्थंकरों की शासन यक्षी के रूप में इनमें आयुध, वाहन आदि भिन्न प्रकार के होते हैं। गौरी, वज्रांकुशी, वज्रश्रृंखला, वज्र-गांधारी, प्रज्ञापारमिता, विद्युज्वालाकराली जैसी देवियों की मान्यता बौद्ध

१. उत्तर भारत में जैन प्रतिमा विज्ञान, पृ० ८१-८४, जैन इंस्टीट्यूट, वाराणसी।

२. खजुराहो के जैन मन्दिरों की मूर्तिकला, पृ० २०, प्रकाशक—वही।

परम्परा में भी रही है। श्वेताम्बर परम्परा में भी कुछ नाम-मात्र की भिन्नता के साथ सोलह विद्यादेवियों के अंकन की परम्परा है।

लाडनूं के इस मन्दिर में एक ही पाषाणफलक पर उत्कीर्ण इन विद्यादेवियों की मूर्तियों का आनुमानित काल बारहवीं शती माना गया है। इस पाषाणफलक (५२ × ४० से० मी०) की रचना तोरण शैली के आधार पर हुई है। दोनों ओर कुछ खण्ड युक्त खम्भे हैं। दोनों खम्भों के अग्रभाग में निर्मित रथिकाओं (वेदिकाओं) में और अर्द्धवृत्ताकार घेरे की मध्यवर्ती रथिका में पद्मासन मुद्रा में जिन प्रतिमायें अंकित हैं। मध्य की शीर्षस्थ इस रथिका के दोनों ओर अर्थात् चौड़े अर्द्धवृत्ताकार वाले भाग में विविध वाद्ययन्त्र लिए नृत्यमुद्रा में पांच-पांच अप्सरायें अंकित हैं। सोलह विद्यादेवियाँ चार पंक्तियों में चार-चार की संख्या में प्रतिष्ठित हैं। सभी पद्मासन मुद्रा में शास्त्रीय परम्परानुसार अपने-अपने यथायोग्य आयुधों, प्रतीकों एवं वाहनों से युक्त हैं। सभी की मुखमुद्रा समान रूप से गम्भीर एवं शान्त है। देवियों की प्रथम पंक्ति के ऊपर बीचों-बीच तथा इसके दोनों ओर एक-एक जिन प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में अंकित हैं। दोनों खम्भों के बगल से हाथियों के शीर्ष (सूंढ़ युक्त सिर) भाग अंकित हैं। बलिष्ठ घोड़े खड़े हैं।

यह पाषाणफलक विशेष रूप से इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि छह जिन प्रतिमाओं के साथ सोलह विद्या देवियों के एक साथ अंकन की परम्परा के उदाहरण सम्भवतः दुर्लभ ही हैं।

आराधिका

सफेद संगमरमर के एक ही पाषाणफलक पर उकेरी गई यह आराधिका की खड्गासन (४३ × २८ से०मी०) प्रतिमा है जिसके परिकर में ध्यानस्थ-मुद्रा में बैठी हुई पंद्रह जिन प्रतिमायें हैं। इस पाषाण फलक की रचना तोरण शैली में की गई है। ऊपर अर्द्धगोलाकार में सर्वप्रथम बीचों-बीच एक जिन प्रतिमा है, इसके नीचे क्रमशः चार जिन प्रतिमायें हैं। इसी तरह एक के बाद एक समान खण्डों में दायीं एवं बायीं ओर पाँच-पाँच जिन प्रतिमायें हैं। मध्य में आराधिका की प्रतिमा अंकित है। जैनकला जगत् में इस प्रकार की मूर्तियों के उदाहरण सम्भवतः कम ही हैं। सिद्धक्षेत्र रेशंदीगिर–नैंनागिरि [म० प्र०] के प्राचीन मूर्तियों से युक्त मन्दिर की बीच वाली वेदी के पीछे दीवार पर अवश्य इससे मिलती-जुलती मूर्ति

Scanned with CamScanner

आराधिका

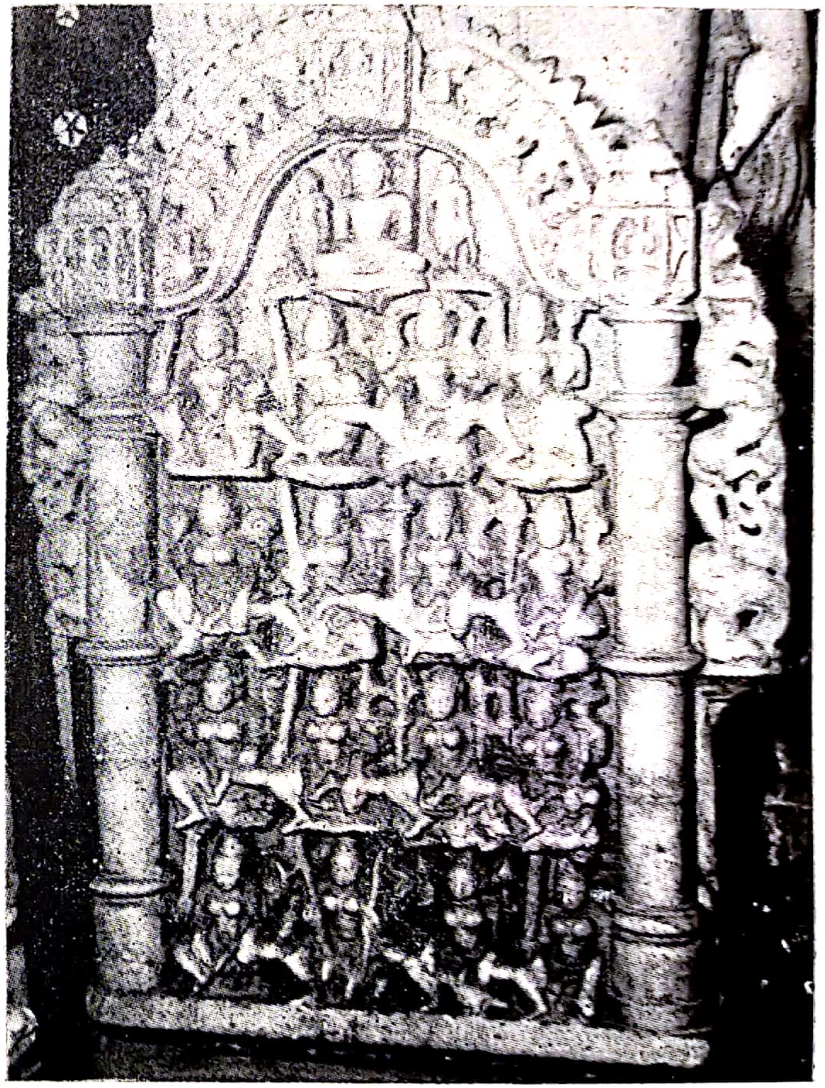

सोलह विद्या देवियाँ

Scanned with CamScanner

भगवान् वृषभदेव

Scanned with CamScanner

देखी जा सकती हैं। किन्तु वह परिकर रहित देशी गहरे भूरे रंग के पत्थर की है।

सामान्य रूप में देखने पर यह जिनेन्द्र भगवान् की 'आराधिका' प्रतीत होती है। किन्तु इसे यहाँ ऋद्धि देवी की प्रतिमा के नाम से भी जाना जाता है। पर इस नाम को अन्तिम नहीं माना जा सकता। इस प्रतिमा की सही पहचान के लिए देश के कुछ प्रमुख जैन मूर्ति कलाविदों को इसका चित्र भेजा; पर सही जानकारी प्राप्त न हो सकी। अतः इसकी पहचान अन्वेषण का विषय है।

सम्पूर्ण पाषाणफलक साधारण कलात्मक वेलबूटों से सुसज्जित है। मध्य में आराधिका भावपूर्ण मुद्रा में खड़ी है जिनके दोनों हाथ पेट और पेड़ू के मध्य में हैं और जो दोनों हाथों में नारियल अथवा फलाकार जैसी अन्य कोई वस्तु लिए हुए है। भोली-भाली मुद्रा वाली इस मूर्ति में नारी सौन्दर्य कूट कूटकर भरा है। भव्य एवं प्रमोदकारी मुखमुद्रा, स्नेहिल आँखें, अंग-उपांगों की सुघड़ता-इन सभी विशेषताओं ने इस मनोहर मूर्ति में मानो जीवन फूँक दिया है। इसे देखने से लगता है कि कलाकार ने मातृत्व भाव को मूर्ति के रूप में साकार किया है। कानों में लटकते हुए बड़े-बड़े कुण्डल, गले में हार तथा उभरे हुए वक्ष के मध्य से उदर भाग तक लटकती मोतियों की माला आदि आभूषणों से यह सुसज्जित है। हाथों में भी कंगन, बाजूबंध आदि विविध आभूषण पहने है। साड़ी को उकेरी गई ऊँची-नीची रेखाओं से अंकित किया गया है। पैरों के दायीं-बायीं ओर तथा मध्य में घुटनों तक साड़ी या अन्य वस्त्र के लटकते हुए पल्ले दिखाए गये हैं। परिकर युक्त होने से इसके सौन्दर्य में चार चाँद लग गये हैं, साथ ही मूर्ति की कलात्मकता भी अनुपम हो गयी है।

आराधिका के रूप में इस प्रकार मातृत्व की साक्षात् मूर्ति के निर्माण में कलाकार ने अपनी जीवन साधना एवं यथार्थ भावाभिव्यक्ति का जो परिचय दिया है वह अपने आप में परिपूर्ण है।

इस मूर्ति पर उल्लिखित लेख इस प्रकार है:—सं० १२२६ माघ सुदी १३ सौख्य संप्राप्ति....प्रतिमा प्रतिष्ठिता सिद्धै....कारिता। कृमि....।

भगवान् वृषभदेव

इन मन्दिर में ऊपरी हाल की बड़ी बेदी को प्राचीन एवं कलात्मक मूर्तियों के शीर्षस्थ उदाहरणों का एक लघु संग्रहालय कहा जाय तो

Scanned with CamScanner

अत्युक्ति न होगी। इसमें तीर्थंकरों की कई भव्य और प्राचीन मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की यह मूर्ति देशी भूरे रंग के एक ही पाषाण फलक पर उकेरी हुई परिकर सहित (६९ × ५४ सेन्टीमीटर) प्रतिमा है। पूर्ण विकसित विशाल कमल की पंखुड़ियों पर पद्मासन एवं ध्यानस्थ योगी की मुद्रा में ऋषभदेव की यह मूर्ति पाषाणफलक के ऊपरी भाग में उत्कीर्ण वृक्ष की छाया में विराजमान है। मूर्ति के सिर के ऊपर छाया किये वृक्ष की दोनों ओर झुकी हुई शाखाओं के अन्तिम भाग में बीचों-बीच सुसज्जित भक्ति तथा प्रसन्न मुद्रा में दोनों ओर दो विद्याधर अपने हाथों में पुष्पों से गुँथी हुई मालायें लिए आकाशमार्ग में दर्शाये गये हैं।

ऋषभदेव की इस मूर्ति का मुख पाषाण में उकेरे गये सुन्दर प्रभामण्डल की किरणों से सुशोभित है। ऊपर तीन छत्र भी अंकित हैं। छत्र के ऊपर से दोनों ओर फल एवं पत्तियों युक्त (वटवृक्ष) की शाखायें प्रभामण्डल के किनारों पर झुकी हुई हैं। पूर्ण ध्यानस्थ मुद्रा में होने से मूर्ति का वक्ष कुछ आगे की ओर उभरा हुआ दिखलाई पड़ता है, जिसके बीचों-बीच श्रीवत्स बना हुआ है। हाथ-पैरों में चक्रादि महापुरुषत्व के चिन्ह अंकित हैं। मूर्ति के दोनों ओर हाथों के बाजू में दो चँवरधारी देव भक्तिभाव से खड़े हैं, जो अपने एक हाथ से चँवर ढुरा रहे हैं तथा दूसरा हाथ कटि भाग में रखे हुए हैं। ये दोनों देव विविध प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुशोभित हैं। इनमें मोटी तह वाला वस्त्रखण्ड (दुपट्टा) सामने जंघाओं से लिपटा हुआ दिखाई देता है। कमर में बड़े-बड़े मनकों वाली मेखला, गले में माला तथा कानों में बड़े-बड़े कुण्डल धारण किये हैं। केशसज्जा दोनों की बहुत सुन्दर है। बायीं ओर का चँवरधारी देव अपने सिर पर कलगीयुक्त मुकुट धारण किये हैं जबकि दूसरे का सिर मुकुट रहित है।

चूँकि यह प्रतिमा लेख और चिह्न रहित है, किन्तु दोनों कन्धों को छूते कानों के नीचे तक फैली हुई केशराशि (जटाओं) के अंकन से यह स्पष्ट है कि यह ऋषभदेव की ही मूर्ति है। क्योंकि ऋषभदेव की प्रतिमाओं में इस प्रकार के जटाजूट के अंकन की परम्परा प्राचीन एवं शास्त्र-सम्मत है। आचार्य जिनसेन ने जटाजूट युक्त भगवान् के मनोहर रूप की इस प्रकार प्रशंसा की है—

Scanned with CamScanner

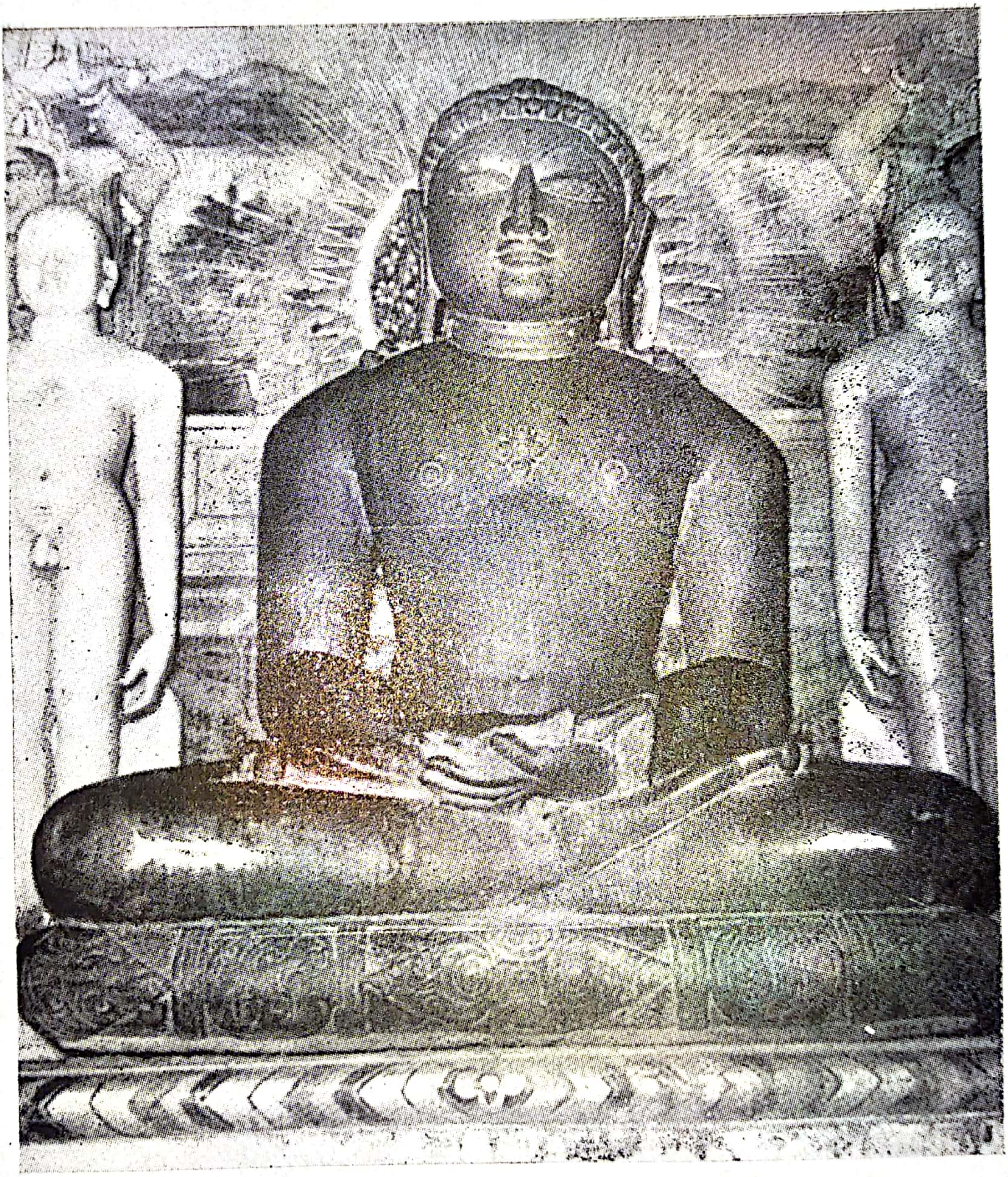

जिन प्रतिमा

Scanned with CamScanner

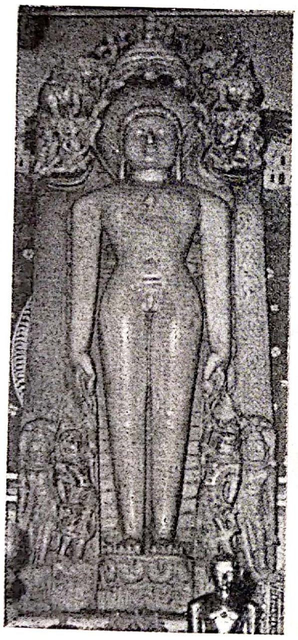

भगवान् पार्श्वनाथ

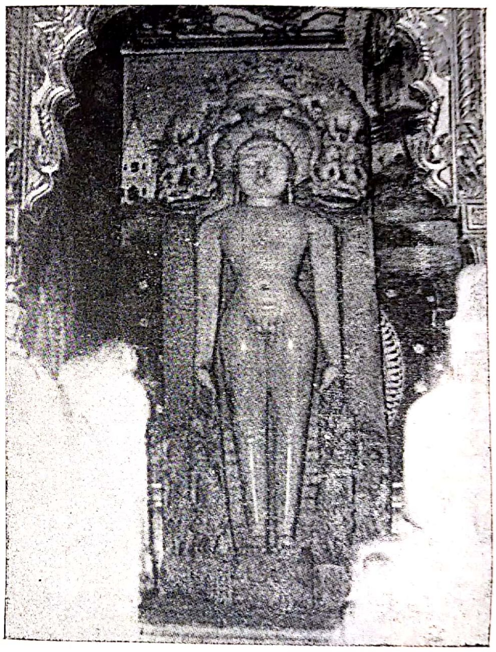

भगवान् पार्श्वनाथ

Scanned with CamScanner

सप्रलम्ब जटाभार भ्राजिष्णुर्जिष्णुराबभौ।
रूढ़प्रारोहशाखाग्रो यथा न्यग्रोधपादपः॥

—हरिवंश पुराण ९।२०४.

अर्थात् लम्बो-लम्बी जटाओं के भार से सुशोभित आदिनाथ जिनेन्द्र ऋषभदेव उस समय ऐसे वटवृक्ष के समान सुशोभित हो रहे थे, जिसकी शाखाओं से जटाएँ लटक रहीं हो।

जिन प्रतिमा

यह तीर्थंकर प्रतिमा पद्मासन गेहुआं भूरे रंग के देशी पाषाण की है। यहाँ की श्रेष्ठ एवं कलात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतिमाओं में इसका उल्लेखनीय स्थान है। इस पर न तो किसी प्रकार का चिह्न है और न शिलालेख है वक्ष में श्री वत्स चिन्ह अंकित है। पादपीठ पर अनेक प्रकार के बेल बूटे बने हुए हैं इसे पहचाना नहीं जा सका कि ये किस तीर्थंकर की मूर्ति है। अत्यधिक सौम्यता, अर्ध निमीलित नेत्र, लम्बे कान, समतल मस्तक, पुष्ट शरीराकृति, शुण्डाकार अंगुलिया, आदि देखने से लगता है कि तीर्थंकर आकृति के प्रत्येक अंग का सुन्दर प्रतिरूपण एवं अभिकल्पना इस प्रतिमा में बड़ी दक्षता से अंकित किया गया है। सिर पर घुंघराले केश योजनावत् ढंग से व्यवस्थित हैं।

दर्शक जब इस प्रतिमा के दर्शन करने वेदी के सामने खड़ा होता है तो अनायास ही मुख से यह पंक्ति आती है—'छवि वीतरागी नग्न मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरौ····। और सामने से जल्दी हटने का मन नहीं होता। इसका अनुमानित काल १०वीं शती माना जाता है।

भगवान् पार्श्वनाथ

इसी बड़ी वेदी में तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ की दो प्राचीन खड्गासन मूर्तियाँ हैं। दोनों एक समान हैं, अतः एक ही कलाकार द्वारा बनाई गयीं प्रतीत होतीं हैं। मात्र अन्तर यही है कि दायीं ओर की मूर्ति के सिर पर सर्प के जहाँ पाँच फण हैं, वहीं बायीं ओर की मूर्ति सप्तफणी है। सफेद संगमरमर की इन मूर्तियों (१२७×५० सेन्टीमीटर) की पादपीठ पर लेख भी अंकित हैं। लेख के ऊपर चिन्ह के रूप में लिपटे हुए नाग की पीठ की आकृति पादपीठ में अंकित है। मूर्ति के दोनों हाथों के बगल से भी नाग को लिपटी हुई आकृति में दर्शाया गया है

Scanned with CamScanner

जो ऊपर जाकर भगवान् को क्रमश पाँचफण एवं सातफण के रूप में सिर पर छाया किये हुए है। पादपीठ में पैरों एवं पीठ के पीछे से शिर के ऊपर तक नाग को अंकित करने का लक्ष्य कलाकार को नाग की विशालता दर्शाना प्रतीत होता है। कायोत्सर्ग मुद्रा में ये मूर्तियाँ बहुत भव्य हैं। सिर के दोनों ओर देव-देवी युगल आकाश मार्ग से भगवान् की भक्ति हेतु नृत्य मुद्रा में आते हुए दिखाये गये हैं। ये देव अपने-अपने हाथों में पुष्पमालायें लिये हैं तथा दोनों ओर की देवियाँ कोई पवित्र फल हाथ में सम्हाले हुए हैं। इन्हीं देव युगलों के आगे ऊपरी भाग में दोनों ओर हाथी अंकित हैं जो अपनी सूँढ़ उठाये हुए हैं और सम्भवतः भगवान् की वंदना कर रहे हैं। इन्हीं हाथियों पर दो सवार वाद्य बजा रहे हैं। बीच के फणों के ऊपर छत्र बना हुआ है और छत्र के ऊपर एक मानवाकृति अपने घुटनों पर हाथ रखे हुए हैं। इसी के सामने कलश रखा हुआ है। सम्भवतः भगवान् के अभिषेक का दृश्य उपस्थित करना कलाकार का लक्ष्य प्रतीत होता है। इसी मानवाकृति के दोनों ओर दो देव नृत्य मुद्रा में हैं।

पादपीठ पर अँकित सम्पूर्ण लेख नहीं पढ़ा जा सका किन्तु जितना पढ़ने में आया वह प्रस्तुत है—सं० १२०९ चैत्र सुदी ११ सांति सुतेक सेढेक का जा पिता····

भगवान् पाश्र्वनाथ

श्याम वर्ण के पाषाण की (५३×४३ सेन्टी मीटर) नवफण युक्त भगवान् पाश्र्वनाथ की यह मूर्ति अद्‌भुत रूप से आकर्षक एवं सजीव जैसी लगने वाली मूर्तिकला का उच्चतम उदाहरण है। सुन्दर वेलबूटों से युक्त पादपीठ पर पद्‌मासन मुद्रा में स्थित इस मूर्ति के दर्शन मात्र से दर्शक आह्‌लादित हो उठता है। चेहरे की गरिमापूर्ण रचना एवं भव्यता देखते ही बनती है। प्रशान्त नेत्रों एवं अनूठी नासिका के नीचे मन्द स्मित ओष्ठों से ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् अपने मुख से अमृतमयी उपदेश देने ही वाले हों। सुगठित चिबुक, कपोलों की खिची हुई रेखायें तथा चक्षु के ऊपर भौहों की रेखाओं का खिचाव आदि सभी कुछ कला की उच्चता एवं कलाकार के सधे हुए हाथों का द्योतक है। कान कन्धों को स्पर्श कर रहे हैं। गोल घुमावदार गहरीं रेखाओं द्वारा गुच्छकों के रूप में प्रदर्शित केशविन्यास है। ग्रीवा की त्रिवली (तीन रेखायें) रत्नत्रय को प्रदर्शित करता हैं। हृदय पर सुन्दर चौकोर श्रीवत्स अंकित है। हाथों, पैरों में महापुरुषत्व के परिचायक चक्र, शंख, मीनादि के चिन्ह अंकित हैं। हाथ

Scanned with CamScanner

पार्श्वनाथ की लघु प्रतिमा

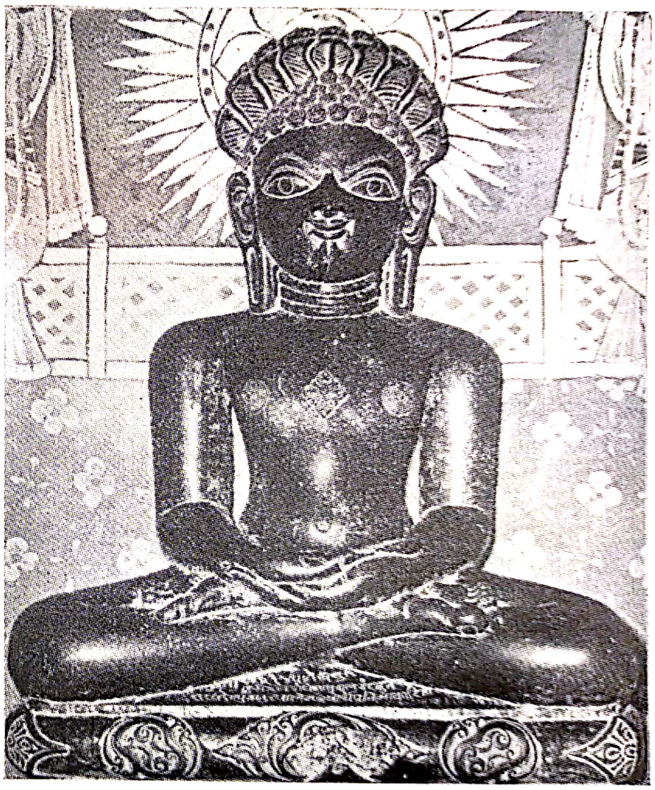

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

Scanned with CamScanner

तीर्थंकर नेमिनाथ सहित पंच बालयति की मूर्ति

Scanned with CamScanner

पैरों की अंगुलियों के लम्बे नाखूनों एवं पर्वों को गहरी रेखाओं से प्रदर्शित किया है।

इसकी पादपीठ पर अंकित लेख इस प्रकार है—

सं० ११४५ ज्येष्ठ सुदी ५ गुरो मूल संघे साहु बालचन्द शुत (सुत) उदयदेव पुत्र सुरपालेन श्रेयार्थं प्रतिमा कारिता।

उपर्युक्त लेख से यह सूचित होता है कि संवत् ११४५ के ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को मूलसंघ के अनुयायी बालचन्द के पुत्र उदयदेव ने अपने पुत्र सुरपाल के कल्याणार्थ यह प्रतिमा स्थापित की।

भगवान् पार्श्वनाथ की यह प्राचीन भव्य मूर्ति गहरे काले संगमरमर पत्थर की (२६ × २० से० मी०) है। इसके मस्तक पर स्थित सर्पफण खण्डित है। इसका आनुमानित समय ११वीं शती के आसपास माना गया है।

तीर्थंकर नेमिनाथ सहित पंचबालयति मूर्ति

सफेद पाषाणफलक पर उत्कीर्ण बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की यह मूर्ति (२८ × १९ सेन्टीमीटर) है। इसके परिकर में चार अन्य तीर्थंकर मूर्तियाँ होने से इसे पंच बालयति की मूर्ति के रूप में जाना जाता है। जैन परम्परा में चौबीस तीर्थंकरों में से बारहवें तीर्थंकर बासुपूज्य, उन्नीसवें मल्लिनाथ, बाईसवें नेमिनाथ, तेईसवें पार्श्वनाथ और चौबीसवें महावीर—ये पाँच तीर्थंकर बालब्रह्मचारी थे और इन्होंने कुमारावस्था में ही मुक्ति प्राप्त की, अतः इन तीर्थंकरों को पंच बालयति के नाम से जाना जाता है।

मूलरूप में यह नेमिनाथ की परिकर युक्त मूर्ति है। इसके पादपीठ में नेमिनाथ के गोमेध यक्ष एवं आम्रा यक्षिणो अंकित है। विकसित कमल पर पद्मासन मुद्रा में ध्यानस्थ यह प्रतिमा प्रभामण्डल एवं छत्रयुक्त है। इन दोनों के ऊपर पत्तियों सहित वृक्ष की शाखा अंकित है। मुख्य मूर्ति के परिकर में दोनों ओर ऊपर कमल पर पद्मासन मुद्रा में तथा इन्हीं के नीचे दोनों ओर खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमायें हैं। इन सभी प्रतिमाओं के शिर के दोनों ओर पत्तों युक्त आम्रवृक्ष की शाखायें अंकित हैं। मुख्य प्रतिमा के दोनों कान कुछ खण्डित हैं।

पादपीठ पर भगवान् की शासन यक्षिणी आम्रा (अम्बिका) अपने पुत्र शुभंकर को गोद में लिए स्तनपान करा रही है। दायें हाथ से आम्रवृक्ष

Scanned with CamScanner

की एक शाखा पकड़े हुए है। इसी तरह गोमेध यक्ष भी अपने बायें हाथ में पत्तों युक्त आम्रवृक्ष की शाखा पकड़े है एवं दायें हाथ में कोई फल लिए हुए है। इस मूर्ति का समय भी ११-१२वीं शती का माना गया है।

यह प्रतिमा लाडनूं निवासी श्री नानूराम गणेशमलजी पाटनी के मकान की नींव की खुदाई के समय प्राप्त हुई थी।

ऋषभदेव की धातु प्रतिमा

धातु की मूर्तियों के निर्माण की परम्परा काफी प्राचीन है। प्राचीन मान्यताओं के अनुसार ग्रहों का सम्बन्ध विभिन्न धातु अयस्कों से होता है। अतः धातुमूर्तियों के निर्माण के समय इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था। जैन परम्परा में अष्टधातु की मूर्ति निर्माण का भी काफी प्रचलन प्राचीन काल से रहा है। अष्टधातु के अन्तर्गत प्रायः सोना, चांदी, पीतल, लोहा, टिन, शीशा, तांबा एवं जस्ता का मिश्रण होता है। धातुओं का यह मिश्रण पवित्र माना जाता था। दक्षिण भारत में पंचलौह के रूप में सोना चांदी, तांबा, पीतल एवं सफेद शीशा के मिश्रण का उपयोग धातु की मूर्तियों के निर्माण में होता रहा है।

लाडनूं के इस मन्दिर में छोटी-बड़ी धातु की अनेक मूर्तियाँ है। तोरणों वाली वेदी के मध्य में चौबोस तीर्थंकरों की प्रतिमाओं से युक्त अष्टधातु का एक फलक है। जिसके मध्य में भगवान् ऋषभदेव की मूल प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में है। इसी के परिकर में दायें, बायें तथा ऊपर शेष तेईस तोर्थंकरों की मूर्तियां हैं। अपने समय की धातु मूर्तिकला का इसे अच्छा उदाहरण कहा जा सकता है।

मूर्ति के पीछे भाग में एक लेख इस प्रकार है—सं० १२२६ फाल्गुन बदी २ बुधे श्री माथुरसंघे आचार्य श्री अनन्तकीर्ति भक्त खांडिल्लपालवंशीय श्रेष्ठीतय बहुदेव सुन महिपति दामोदर माधवेः दामोदर तत्पत्नी शान्तिका पुत्री जत्नो श्रेर्यति चतुर्विंशतिका जिनविम्बानां सोमनां कारितेति।

इस लेख में अनेक नामों के साथ—खांडिल्लपाल वंश का नाम प्रस्तुत मूर्ति के प्रतिष्ठापक के रूप में विशेष उल्लेखनोय है। खांडिल्लपाल शब्द वर्तमान में प्रचलित खण्डेलवाल जाति का मूल एवं प्राचोन नाम है।

धातु की चौबीसी प्रतिमा

ऊपरी बड़ी वेदो में अष्टधातु के एक हो फलक पर चौबीस तीर्थंकरों की सम्मिलित प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं। मध्य में मूल बड़ी प्रतिमा

Scanned with CamScanner

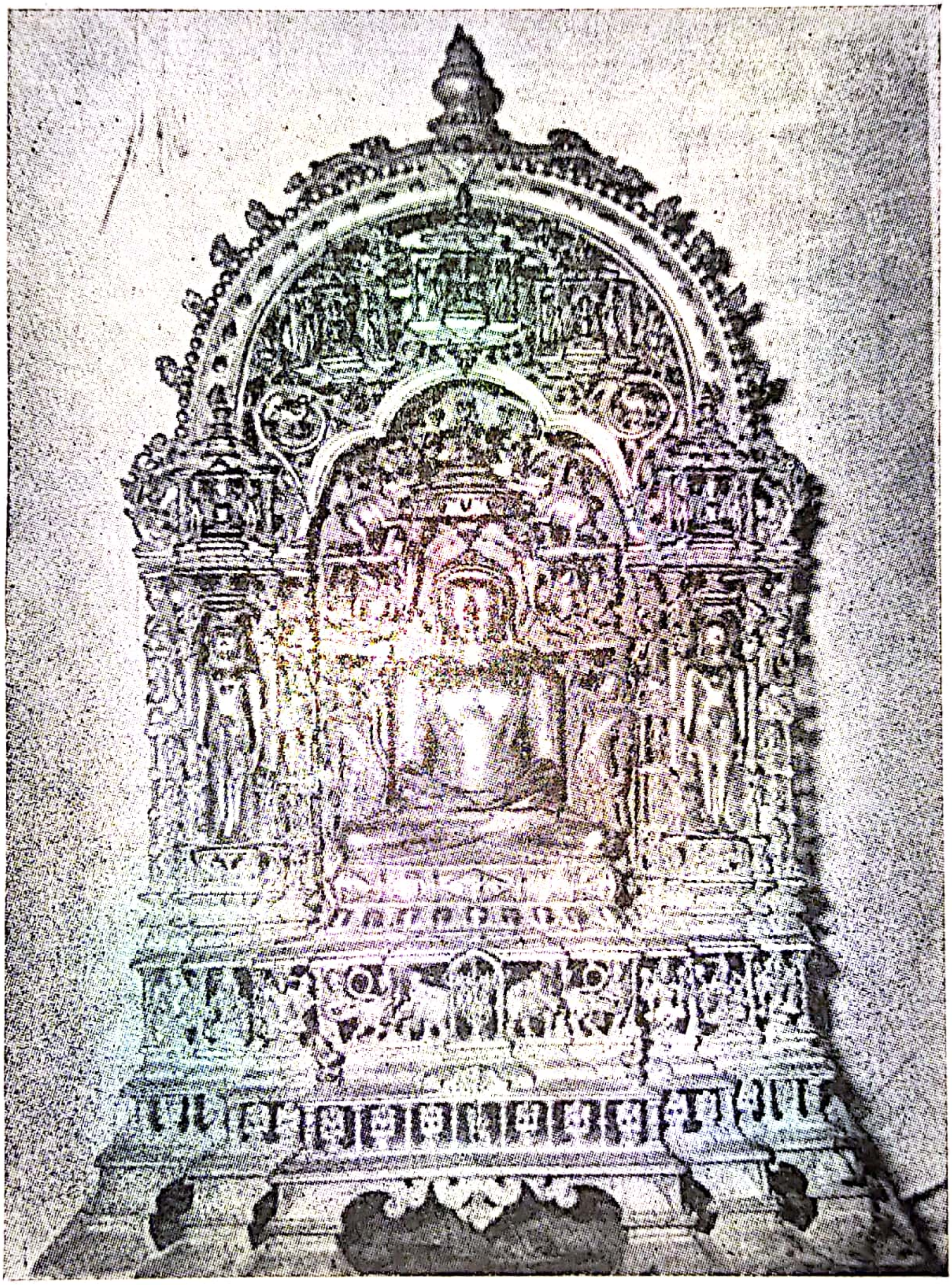

ऋषभदेव की धातु प्रतिमा

Scanned with CamScanner

धातु की लघु जिन प्रतिमायें एवं पूजनपात्र

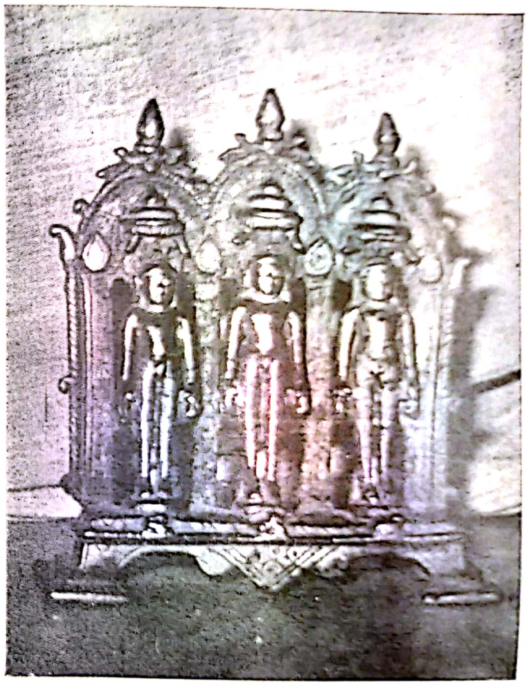

त्रितीर्थी धातु प्रतिमा

Scanned with CamScanner

दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ की है। इसके पादपीठ में कल्पवृक्ष का चिह्न बना हुआ है। इसी मूर्ति के परिकर में दायीं-बायीं ओर तथा मध्य में शेष तेईस तीर्थंकरों की प्रतिमायें पंक्तिबद्ध एवं सुव्यवस्थित रूप में विराजमान हैं। इस फलक पर एक अस्पष्ट लेख भी है, यथा—'सं० १५१० वर्षे.....।' यह लेख मात्र इतना ही स्पष्ट रूप से पढ़ने में आया है।

धातु की लघु जिन-प्रतिमायें एवं पूजन पात्र

इसी वेदी में अष्ट धातु की अनेक लघु जिन प्रतिमायें हैं, जो कि इसी वेदी में प्रतिष्ठित है। कुछ वर्ष पूर्व अर्थात् सं० २००७, ज्येष्ठ शुक्ला ५ को इसी मन्दिर से लगा हुआ श्री ऋद्धकरण पाण्ड्या नामक औषधालय के भवन निर्माण के समय कुण्ड को खुदाई में लगभग २० फुट नोचे एक मिट्टी के घड़े में रखी हुई पांच पीतल की तथा एक स्फटिक की जिन प्रतिमायें प्राप्त हुईं थीं। इन्हीं प्रतिमाओं के साथ घड़े में धातु के तत्कालीन प्रचलित पूजन के विविध पात्र, आरती, धूपदानी आदि प्राप्त हुए थे, जो इसी वेदी के बाहर बगल वाले खम्भे में बनी काँच को आलमारी में दर्शनार्थ रखे हुए हैं।

इस घड़े में प्राप्त पांच धातु जिन प्रतिमाओं में बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के शासन यक्ष तथा यक्षिणी आम्रा (अम्बिका) की संयुक्त प्रतिमा हैं। ये दोनों आम्रवृक्ष की घनी पत्तियों की छाया में जोड़ी से सुखासन मुद्रा में बैठे हैं। दोनों ही विविध वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। आम्रा यक्षी की बायीं गोद में बालक प्रियंकर स्तनपान कर रहा है, तथा देवी उसे बायें हाथ से सम्हाले हुए है। दाहिने हाथ में कोई पदार्थ सम्भवतः आमों का गुच्छक है। इनके शोर्षभाग में अर्थात् आम्र गुच्छों के ऊपर तीन जिन प्रतिमायें हैं।

त्रितीर्थी धातु प्रतिमा

एक ही धातु फलक पर खड्गासन मुद्रा त्रिछत्रयुक्त तीन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। प्रत्येक मूर्ति के पादपीठ पर चिह्न अंकित हैं। इनमें अंकित चिन्हों के आधार पर से दायीं ओर की प्रतिमा सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ की है। बायीं ओर की चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ की तथा मध्य की मूर्ति चौबीसवें तीर्थंकर महावीर की है। इसके पीछे स्पष्ट लेख भी अंकित है जिसमें सं० १२१९ लिखा हुआ है।

Scanned with CamScanner

एक अन्य लघु तीर्थंकर मूर्ति स्फटिक की है पर कुछ लोग इसे पुखराज की बताते हैं। यह इसी बेदी में काँच की पेटी में प्रतिष्ठित है। इस तरह यहाँ पांच पीतल की और एक स्फटिक की मूर्ति तथा पूजा के जो धातु–पात्र खुदाई में प्राप्त हुए थे वे सब यहाँ सुरक्षित हैं।

अन्यान्य तीर्थंकर मूर्तियाँ

सफेद संगमरमर की पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है। चिन्ह न होने से यह किस तीर्थंकर की है इसे पहचानना सम्भव नहीं है। इसकी पादपीठ पर सं० १२३० का स्पष्ट उल्लेख है।

सफेद संगमरमर पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा लेख व चिन्ह न होने से किस तीर्थंकर की है, इसे भी पहचानना सम्भव नहीं है लेकिन यह भी उपर्युक्त प्रतिमाओं के समान अर्थात् १२-१३वीं शती की है।

उपर्युक्त दो गेहुंआ तथा आठ सफेद संगमरमर की पद्मासन सभी मूर्तिया बहुत ही भव्य और आकर्षक हैं—

इन मूर्तियों के अतिरिक्त एक छोटी खड्गासन अति मनोज्ञ मूर्ति है, जिसमें तीन देव चँवर ढोलते हुये अंकित हैं। इस पर कोई लेख या चिन्ह नहीं है किन्तु इसका समय भी अनुमानतः १२ वीं शताब्दी का है।

प्राचीन जिन प्रतिमायें

इस मन्दिर के नीचे तलघर वाले भाग में कई ऐसी खण्डित महत्त्वपूर्ण जिन प्रतिमायें हैं जो वेदी में प्रतिष्ठित वर्तमान प्राचीन मूर्तियों से भी बहुत प्राचीन प्रतीत होती हैं। इन पर कोई लेख नहीं है, परन्तु प्राचीनता एवं कलात्मकता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। साथ ही ये जिन प्रतिमायें इस मन्दिर को प्राचीनता विषयक मान्यता में एक नया अध्याय जोड़तीं हैं। नीचे चौक की बाहर की दीवार में बनीं आलमारियों में ये स्थापित हैं। इन मूर्तियों का परिचय इस प्रकार है :—

तीर्थंकर नेमिनाथ

साधारण गेहुँआ रंग के पाषाण (७९×५१ से० मी०) की यह पद्मासन मूर्ति है। इसके पादपीठ पर दोनों ओर बड़ी आकृति के शेर तथा बीचों-बीच धर्मचक्र उपर्युक्त मूर्ति के समान हैं। शेरों की पीठ के सामने तीर्थङ्कर के शासन यक्ष-यक्षिणी विविध वस्त्राभूषणों एवं आयुधों से युक्त अंकित हैं।

Scanned with CamScanner

तीर्थङ्कर नेमिनाथ

Scanned with CamScanner

भगवान् पार्श्वनाथ

Scanned with CamScanner

यद्यपि चौबीसों तीर्थंकरों के शासन यक्ष-यक्षणियों की पहचान उनके आयुधों एवं मुद्राओं आदि से होती है किन्तु इन जैसे लक्षणों वाले शासन यक्ष-यक्षिणी चौबीसों तीर्थंकरों में से किसी के नहीं हैं, फिर भी पद्मासन मुद्रा में यक्षिणी अपने बायें पैर पर अपने बालक को बायें हाथ से सहारा दिये हुए बैठाये है और अपने बालक को स्तनपान कराते हुए दिखाया गया है। इसी के आधार पर यह अनुमान लगाया गया कि ये अम्बिका यक्षिणी हैं और यह जिन प्रतिमा तीर्थंकर नेमिनाथ की है।

उपर्युक्त तीनों खण्डित जिन प्रतिमाओं की जीर्ण-शीर्ण स्थिति को देखते हुए अनुमानतः ये तीनों १० वीं शती के आस-पास की प्रतीत होती है।

प्रायः कुछ लोग खण्डित प्रतिमाओं को पूज्य नहीं मानते किन्तु वास्तुसार प्रकरण (२।३९) में ठक्कुर फेरु ने कहा है कि 'महापुरुषों द्वारा स्थापित शताधिक वर्ष प्राचीन प्रतिमायें यदि विकलांग (खण्डित) भी हो जायें अर्थात् प्रतिमा का कोई अंग टूट भी जायें तब भी पूज्यनीय हैं।

भगवान् पार्श्वनाथ

बृहद् और दोहरे पूर्ण विकसित कमल पर पद्मासन मुद्रा में परिकर युक्त भगवान् पार्श्वनाथ की यह भव्य मूर्ति है। देशी पाषाण से निर्मित यह ९७ × ६१ सेन्टीमीटर की है। कमल के नीचे पादपीठ के दोनों ओर भक्ति पूर्ण अभय मुद्रा में दो विशालकाय सिंह बैठ हैं। पादपीठ के ठीक बीचों-बीच निरन्तर घूमता हुआ सा प्रतीत होने वाला धर्मचक्र है। धर्मचक्र का आरों वाला भाग सिंहों के पृष्ठ भाग की ओर दिखाया गया है। इसी चक्र के दोनों ओर दो देव, जिनके सिर पर भी सर्प फण अंकित है और जो वाद्य यन्त्र बजाते हुए भक्ति भाव से नाच रहे हैं। भगवान् पार्श्वनाथ को प्रतिमा के सिर पर सर्प अपने सप्तफणों से छत्र की तरह छाया किये हुए है। पार्श्वनाथ को ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे हुए बहुत सुन्दर रूप में दिखाया गया है। इसमें अंकित भव्य प्रभामण्डल की किनारों को कमल की पंखुड़ियों से सुसज्जित किया गया है। प्रतिमा के कन्धों के पार्श्व में दोनों ओर मुँह खोले मकराकृतियाँ हैं, जिनके पीछे के सारे भाग में बेल-बूटे अंकित किये गये हैं। ये मकर इसी पाषाण में उकेरी हुई आधार-पट्टिका पर बैठे हैं। दोनों ओर की इन्हीं आधार पट्टिकाओं के नीचे (पीछे के दोनों पैरों के आश्रित खड़े) दो बलिष्ठ कलापूर्ण घोड़े अंकित हैं, जो पीछे के दोनों पैरों के आश्रित खड़े हुए दिखाये गये हैं। इसके नीचे पाद-

पीठ में दायीं ओर धरणेन्द्र और बायीं ओर पद्मावती वन्दना की मुद्रा में विराजित हैं। इन दोनों के सिर पर भी सर्पफण अंकित हैं। पादपीठ के बीचों-बीच जिस अज्ञातनामा मूर्तिकार ने तीर्थंकर पार्श्वनाथ द्वारा धर्मचक्र-प्रवर्तन के प्रतीक रूप में इतना मनोहारी धर्मचक्र बनाया है कि उसे देखकर किसी कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ सहज ही याद आ जाती हैं—

धर्मचक्र के विजय प्रवर्तक, अडिग तुम्हारा है शासन।
तीन काल सातों तत्वों पर टिका तुम्हारा सिंहासन॥

जिन प्रतिमा

एक ही बृहद (४४ × ५२ सेन्टीमीटर) पाषाण फलक पर चिन्ह रहित यह जिन प्रतिमा भी बहुत आकर्षक है। वस्तुतः यह स्वतन्त्र मूर्ति न होकर किसी स्तम्भ या मन्दिर की भीतरी कलापूर्ण दीवार के पाषाण भाग पर निर्मित मूर्ति प्रतीत होती है, क्योंकि इस पत्थर के ऊपर-नीचे कुछ छेद बने हुए हैं, जो स्तम्भ या दीवार के दूसरे पाषाणों से जोड़ने की दृष्टि से किये गये होंगे। परिकर युक्त इस जिन प्रतिमा की जीर्ण-शीर्ण स्थिति को देखते हुए यह काफी प्राचीन प्रतीत होती है।

इस पाषाण फलक पर अंकित प्रायः सभी मूर्तियाँ खंडित हैं अर्थात् इनकी आकृतियाँ स्पष्ट नहीं हैं। मूल जिन प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में प्रतिष्ठित है। दोनों ओर चँवरधारी देव हैं। छत्र के दोनों ओर पीछे के दोनों पैरों पर खड़े, आगे के दोनों पैर ऊपर उठाये दो महावत युक्त गज (हाथी) अपनी सूँड़ में कलश लिए छत्र के ऊपर से अभिषेक करते हुए दिखाए गये हैं। इन्हीं के पीछे नृत्य मुद्रा में कुछ देव भी अंकित हैं। पाषाणफलक के दोनों ओर पूरे पाषाणफलक के बराबर मनमोहक नृत्य मुद्रा में दो देवियाँ हैं, जो विविध वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। ये काफी खंडित हैं फिर भी इनके कानों के बड़े-बड़े कुण्डल, वक्ष पर बड़ा सा हार तथा कटि को मेखला आदि आभूषणों को स्पष्ट देखा जा सकता है। विविध बेलबूटों से यह सुसज्जित है। किसी प्रकार का चिन्ह न होने से इस मूर्ति की पहचान नहीं हो सकी।

प्राचीन मन्दिर का कलापूर्ण प्रवेश द्वार

लाडनूं नगर का पुरातन वैभव यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। यहाँ का दिगम्बर जैन मन्दिर इस दृष्टि से सौभाग्यशाली मन्दिर है, क्योंकि इसमें

जिन प्रतिमा

Scanned with CamScanner

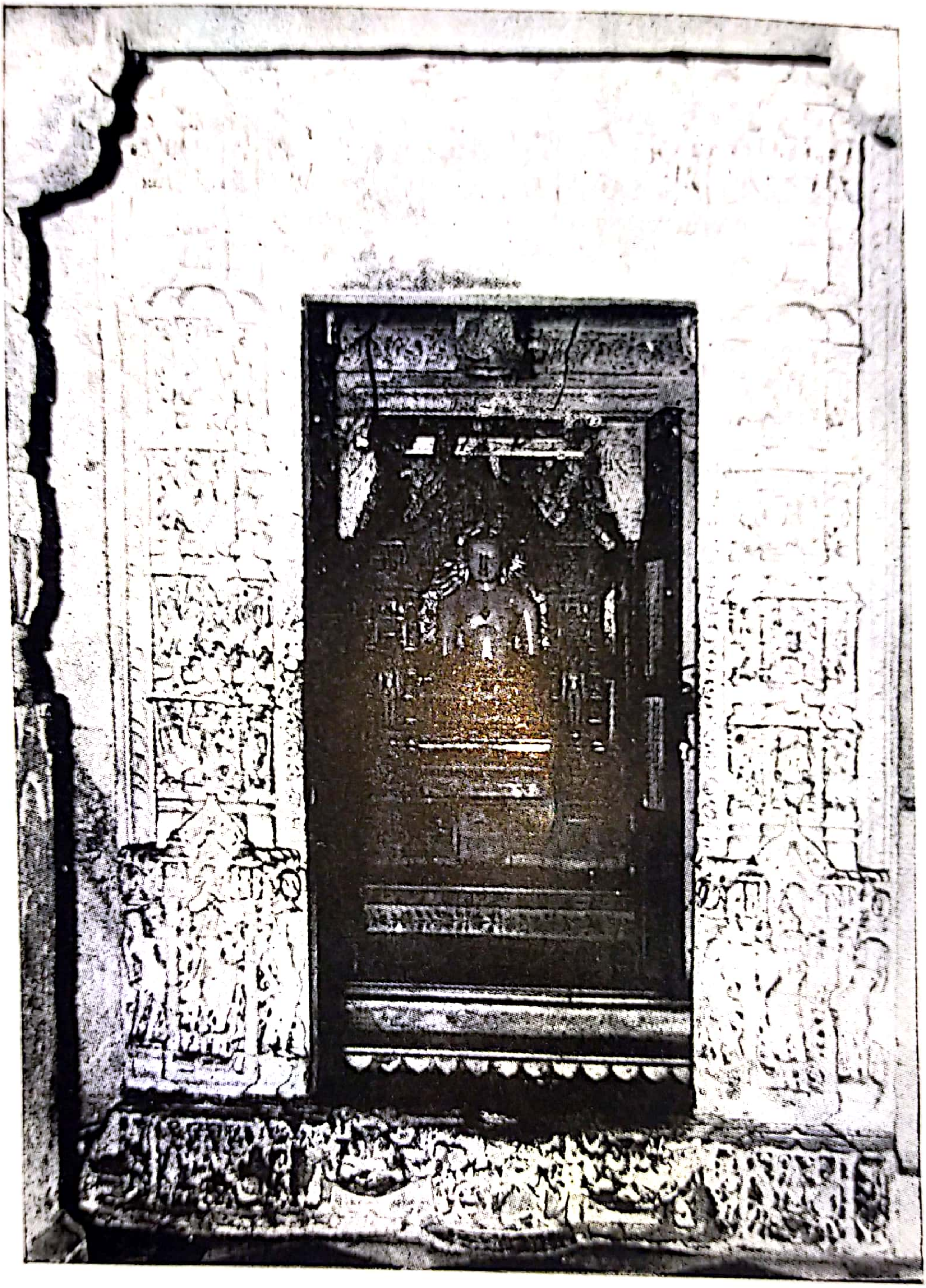

प्राचीन मन्दिर का कलापूर्ण प्रवेशद्वार

Scanned with CamScanner

बहुत कुछ प्राचीन जैन कला एवं सांस्कृतिक समृद्धि के प्रतीक अनेक पाषाण एवं धातु मूर्तियाँ, स्तम्भ लेख, कलात्मक तोरण, कलापूर्ण द्वार, पूजन-पात्र आदि पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं। इस मन्दिर के नीचे तलघर में स्थित प्राचीन मन्दिर का यहाँ कलापूर्ण प्रमुख प्रवेश द्वार है। इसी मन्दिर में भगवान् शान्तिनाथ की तोरण सहित भव्य मूर्ति प्रतिष्ठित है। ऐसा कहा जाता है कि पहले यह मन्दिर भूगर्भ में था, ऊँचे टीले युक्त इस भूभाग को खोदने पर यह सम्पूर्ण प्राचीन मन्दिर निकला। बाद में इस मूल मन्दिर का यथावत् प्राचीन रूप सुरक्षित रखते हुए इसके ऊपर उच्च शिखर युक्त (इसी पुस्तक के मुखपृष्ठ पर चित्र देखिए) विशाल मन्दिर का निर्माण कराया गया।

प्राचीन मन्दिर के चार प्रवेश द्वारों में यह प्रमुख द्वार है। यह सम्पूर्ण रूप में बहुविध कलाकृतियों से अलंकृत है। इसके चारों स्तम्भों पर जिनदेव, सरस्वती, विद्या देवियाँ, शासनदेवियाँ तथा सिंह तथा अनेक बेलबूटे अंकित हैं। ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि द्वार के सबसे ऊपरी भाग के मध्य में जैन मन्दिर की प्रतीक जिन प्रतिमा उत्कीर्ण थी। किन्तु अब यहाँ उसके विद्यमान होने के सूचक निशान मात्र अवशिष्ट हैं। इस द्वार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके सबसे ऊपरी भाग में छत से स्पर्श करते हुए पत्थर पर एक ही पंक्ति में चार फुट से भी अधिक लम्बा एक लेख उत्कीर्ण है। कुछ तोड़-फोड़ के कारण यह लेख पूर्ण स्पष्ट नहीं पढ़ा जा सका है किन्तु पद्य एवं गद्य से युक्त संस्कृत भाषा के इस लेख से यह स्पष्ट है कि यह मूल रूप में भगवान् शान्तिनाथ जिनालय है। लेख इस प्रकार है—

श्री देवालय····न्वय श्री पासाद चर्या बहुज्ञात-नृपः।
सुमेयुत्कट प्रतिमा····सप्तानारुय प्रमोदी भवि सेठाः ॥१॥
.... ····बहुदेवा कारितं जिनमन्दिरम्।
सद्देवानु···· ····ना श्रेयसे···· ····नंद्विता धिरम् ॥२॥
श्री शान्तिनाथ गोबुकाना प्रतीवरुक्तानां सद्विषां क्षेममज्जिति।

इसी द्वार के बाहर सामने चौक में प्राचीन मन्दिर के लगभग तीस खम्भे हैं। एक खम्भे पर प्राचीन लिपि में लेख है, जो पढ़ा नहीं जा सका। इसी चौक की दीवार की आलमारियों में भगवान् नेमिनाथ, पार्श्वनाथ की प्राचीन मूर्तियाँ तथा एक अन्य जिन प्रतिमा प्रतिष्ठित हैं। इस द्वार के भीतर वाले भाग में तीन वेदियाँ हैं। मध्यवर्ती बड़ी वेदी में सामने भग-

Scanned with CamScanner

वान् शान्तिनाथ की तोरण युक्त मूर्ति तथा इसके बगल में भगवान् अजितनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित है।

बीसवीं शती का श्रेष्ठतम

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, सुखदेव आश्रम

राजस्थान कलापूर्ण प्राचोन जैन मन्दिरों, भवनों और विशाल एवं भव्य मूर्तियों को समृद्ध परम्परा के लिए सम्पूर्ण देश में विख्यात है। सम्पूर्ण भारत में इस बीसवीं शती में भी एक से एक उत्कृष्ट अनेक जैन मन्दिरों एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ है और निरन्तर हो रहा है किन्तु लाडनूं नगर का सुखदेव आश्रम नाम से प्रसिद्ध दिगम्बर जैन मन्दिर इस बोसवीं सदी के आधुनिक मन्दिरों में सर्वोत्कृष्ट अनुपम विशाल मन्दिर है। यदि यह मन्दिर भारत के किसी महानगर में होता अथवा इस स्थान को पर्यटन स्थल का दर्जा प्राप्त होता तब निश्चित ही इसकी गणना ताजमहल जैसे दर्शनीय स्थल के समान ही होती।

इस सम्पूर्ण मन्दिर का निर्माण उत्कृष्ट श्रेणी के संगमरमर (मकराना) पाषाण से हुआ है। इसकी प्रतिष्ठा वोर-निर्वाण संवत् २४८४ (विक्रम संवत् २०१५) वैशाख शुक्ला ७ शनिवार तदनुसार दिनांक २६-४-१९५८ को इसी शहर के धार्मिक श्रावक स्व० श्रीमान् सेठ सुखदेवजी गंगवाल की प्रेरणा से इनके पाँचों सुपुत्रों—श्री भैरोदानजी, तोलारामजी, हंसराज जी, बच्छराजजी एवं गजराजजी गंगवाल द्वारा सम्पन्न हुई। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा-विधि इन्दौर के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० नाथूलालजी शास्त्री के द्वारा सम्पन्न की गई।

यह भव्य मन्दिर लाडनूं नगर के हृदय-स्थल राहुगेट के बाहर, कोलाहल से दूर सुरम्य स्थान पर विस्तृत क्षेत्रफल में स्थित है। हर दीवार की बनावट एवं इस पर दो ओर बने विशाल दरवाजों आदि को देखने से यह कोई भव्य राज-प्रासाद लगता है।

मन्दिर के सिंह द्वार से प्रवेश करते ही दोनों ओर ऊँचो-ऊँची क्यारियों से घिरे हरी-हरी नरम घास के लॉन है। इसके आगे दूसरे दरवाजे में प्रवेश करने पर सामने सुन्दर मुख्य वाटिका है। जिसमें संगमरमर पाषाण से निर्मित कलापूर्ण फव्वारे, झरना आदि मन को शान्त कर देते हैं। दायीं ओर से कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर मन्दिर का विशाल आँगन (चौक) है। जिसमें सामने संगमरमर को खुली एवं ऊँची वेदी में भगवान् बाहु-

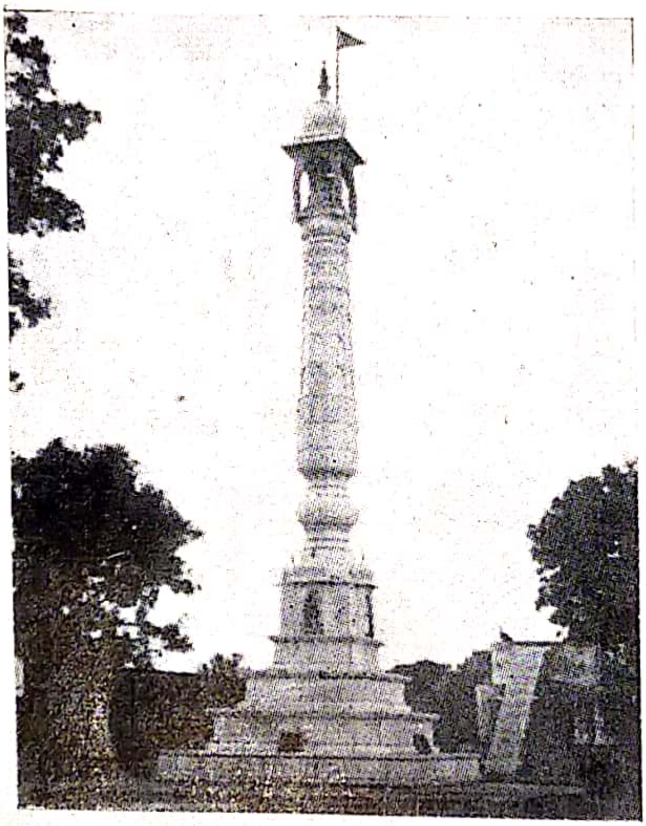

श्री दि० जैन नशिया जी
मन्दिर का मानस्तम्भ

Scanned with CamScanner

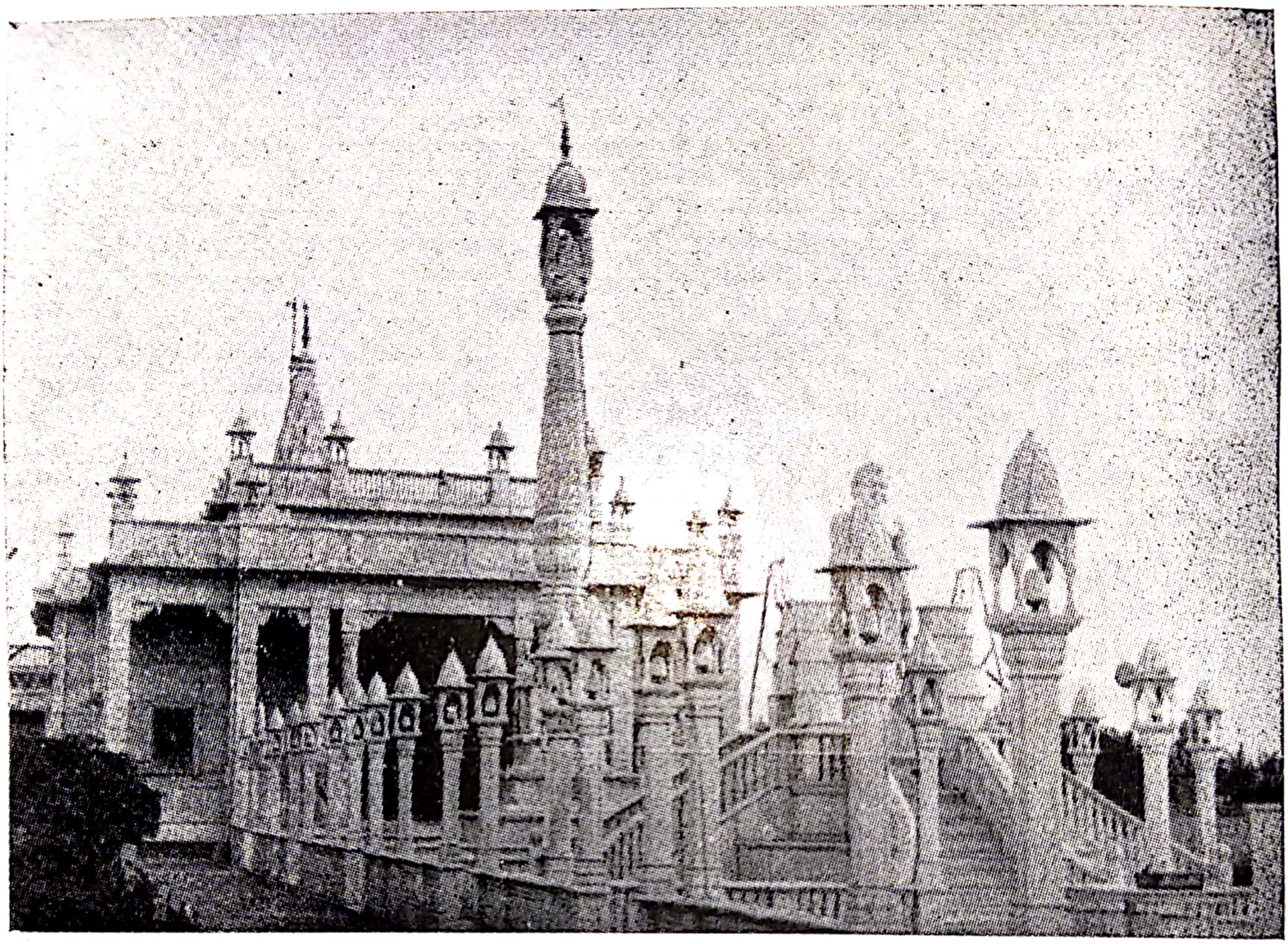

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर (सुखदेव-आश्रम) का विहंगम दृश्य

Scanned with CamScanner

बलि की खड्गासन मूर्ति प्रतिष्ठित है। मूर्ति तक पहुँचने के लिए चारों ओर रेलिंग सहित कुछ सीढ़ियाँ है। इसी मूर्ति के सामने भक्ति में लीन एवं करबद्ध मुद्रा में इस मन्दिर-निर्माण की कल्पना को साकार करने में मूल प्रेरक श्रीमान् स्व० सेठ सुखदेवजी का संगमरमर से निर्मित स्टेच्यू है। स्व० सेठजी की स्मृति को अमर बनाने हेतु इस मन्दिर का दूसरा नाम सुखदेव-आश्रम (सुखाश्रम) रखा गया।

मन्दिर के इसी आँगन में बहुत ऊँचा मानस्तम्भ है जिसके ऊपर बनी चतुर्मुखी वेदिका में चारों ओर चार तीर्थंकर प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं। इसी के आगे दायें-बायें दो ऊँचे तोरण द्वार हैं। इसके साथ ही यहीं से पंक्तिबद्ध रूप में पचासों विद्युत प्रकाश हेतु संगमरमर के खम्भे हैं, जिन पर शिखरबद्ध चतुर्मुखी छोटी वेदिकाओं में विद्युत बल्ब लगे हुए हैं। इसी तरह मन्दिर के चारों ओर के परकोटे में थोड़े-थोड़े अन्तर से बनी सैकड़ों वेदिकाओं में रात्रि के समय इन सबमें एक साथ विद्युत-प्रकाश होता है तो सारा वातावरण जगमगा उठता है। ऐसा लगता है मानों सितारों से जगमगाता आकाश ही यहाँ उतर आया है। हरी-हरी दूब के लॉन एवं कई पुष्पवाटिकाओं से घिरे सैकड़ों विद्युत दीपों से जगमगाते शान्त सुहावने एवं धार्मिक वातावरण से युक्त इस मन्दिर में गर्मी की शाम आध्यात्मिक आनन्दानुभूति में व्यतीत होती है।

मन्दिर के प्रवेशद्वार के दोनों ओर आधुनिक उच्चकला के प्रतीक संगमरमर के बने हुए दो विशाल सिंह खड़े हुए हैं। द्वार में प्रवेश करते ही सामने मुख्य वेदी पर प्रतिष्ठित अष्टधातु से निर्मित आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की भव्य एवं सौम्य मूलनायक प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इस वेदी की मण्डप छत भी दर्शनीय है। इसमें सभी ऋतुओं में सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति बतलाने वाले आकाश के चित्र बने हुए हैं। मन्दिर के द्वार से इस वेदी तक पहुँचने के लिए एक लम्बा-चौड़ा बरामद पार करना पड़ता है। इस फर्श का निर्माण संगमरमर की रंग-बिरंगी सुन्दर टाइल्स से किया गया है। ऐसा लगता है जैसे पूरे बरामदे में बड़ा सा सुन्दर कालीन बिछाया गया हो। बरामदे के दोनों ओर के खम्भों पर स्थित विविध वाद्य यंत्र बजाती गन्धर्व देवियों की मूर्तियाँ भगवान् की भक्ति में सदा लीन रहती हुई प्रत्येक दर्शनार्थी के आगमन का स्वागत करतीं है।

मुख्य वेदी में भगवान् ऋषभनाथ की मूर्ति के सामने ही उत्कृष्ट कला का प्रतीक 'परिकर तोरण' है, जिसका निर्माण जैन बड़े मंदिर के

Scanned with CamScanner

तोरण के आधार पर किया गया है। इस वेदी के चारों कोनों में बने कक्षों में से प्रथम कक्ष में आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव एवं अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर की सौम्य मुद्रा वाली युगल खड्गासन प्रतिमाओं के साथ ही अन्यान्य तीर्थङ्करों की कई मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। द्वितीय कक्ष में ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र भरत की विशाल खड्गासन मूर्ति है, जो भरत चक्रवर्ती नाम से प्रसिद्ध थे। इन्होंने दीर्घ तप-साधना द्वारा मोक्ष पद प्राप्त किया था। इन्हीं भरत के नाम से इस देश का 'भारत' नाम प्रचलित हुआ। तीसरे कक्ष में भरत के लघु भ्राता बाहुबलि की विशाल खड्गासन मूर्ति है। चतुर्थ कक्ष में धातु एवं पाषाण की अनेक छोटी-बड़ी मूर्तियाँ हैं। मंदिर के पीछे बहुत बड़ी धर्मशाला है। मंदिर परिसर में ही कई हजार दर्शकों के बैठने की क्षमता वाला एक खुला आडोटोरियम है। जिसके सामने रंग-मंच के योग्य भवन बना हुआ है। इस नगर के अनेक सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सार्वजनिक कार्यक्रम प्रतिवर्ष यहीं सम्पन्न होते हैं।

इस भव्य एवं विशाल मंदिर का निर्माण योजनाबद्ध रूप में बड़ी श्रद्धा, लगन, सुरुचिपूर्ण ढंग एवं तन, मन, धन के पूर्ण समर्पण भाव से किया गया है। एक-एक पत्थर एवं कलाकृति को सुन्दरतम बनाकर लगाया गया है। इस मंदिर निर्माण के प्रत्यक्षदर्शी लोगों का कहना है कि मंदिर निर्माण के समय इसके निर्माता गंगवाल परिवार के लोग देश के सभी प्रसिद्ध मन्दिरों, सुन्दर भवनों को देखने जाते और जहाँ कोई आकर्षक विशेषताओं को देखते उसका निर्माण इस मंदिर में करवाते। यहाँ तक कि यदि उस स्थान पर पहले ही कुछ बन चुका है तो उसे तुड़वा कर नया आकर्षक निर्माण करवाते। इसलिए यह अद्भुत आकर्षक भव्य मंदिर अनेक वर्षों के अथक श्रम एवं अपार धन के व्यय से निर्मित हुआ। वस्तुतः भारत के सभी प्रसिद्ध आधुनिक मन्दिरों में यह अन्यतम मंदिर है।

वर्तमान में मंदिर के देखरेख की व्यवस्था गंगवाल जैन परिवार द्वारा गठित "श्री सुखदेव चेरीटी एस्टेट' द्वारा संचालित होती है।

दिगम्बर जैन मन्दिर एवं संस्थायें

लाडनूं (राजस्थान) एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर है। जिसने अनेकों सत्ताओं का उत्थान-पतन देखा है। ऐतिहासिक खोज के अनुसार लाडनूं को "बूढ़ी चंदेरी" भी कहा जाता है। इसका कारण सम्भवतः यह रहा है कि इस क्षेत्र पर महाभारत कालीन शिशुपालवंशी अहालिया पंवरो

Scanned with CamScanner

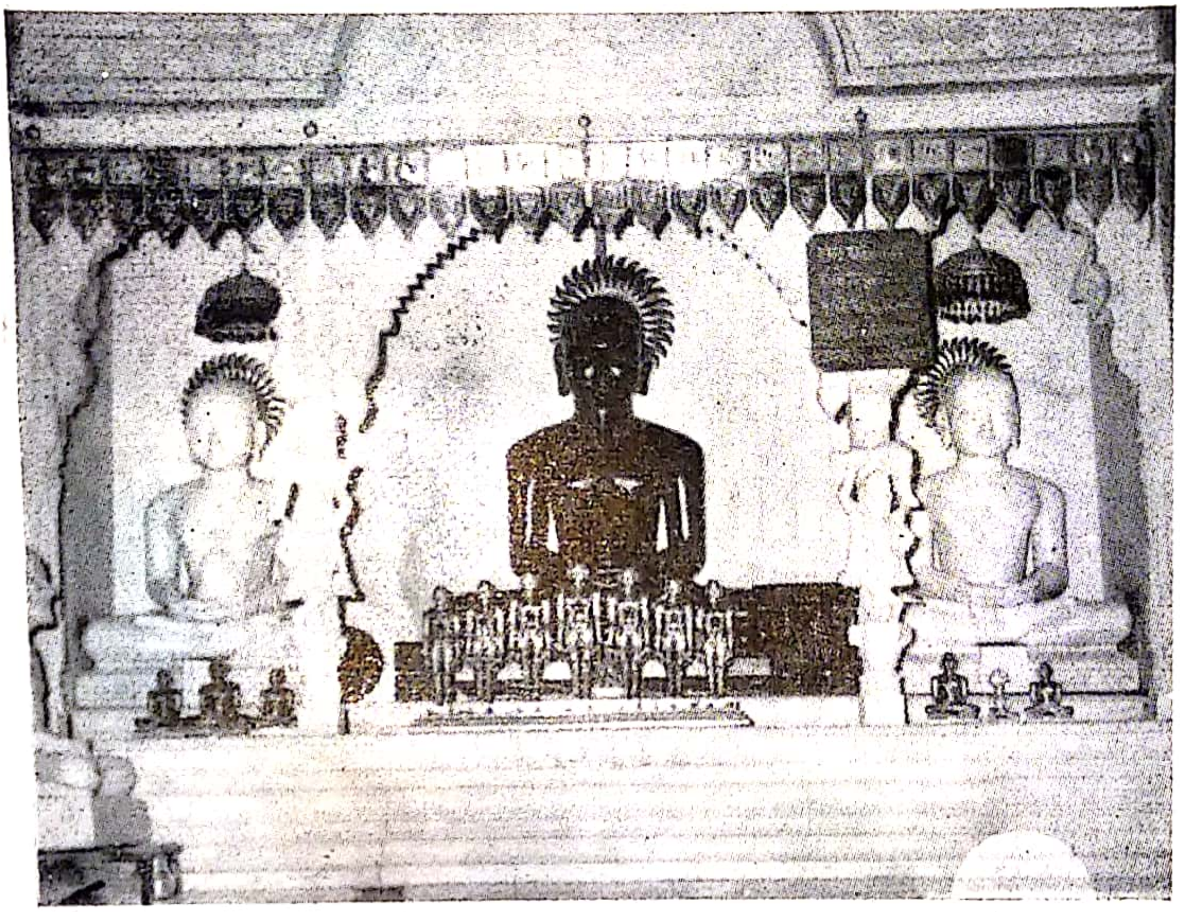

श्री दि० जैन बगड़ा मन्दिर की मूल वेदी

Scanned with CamScanner

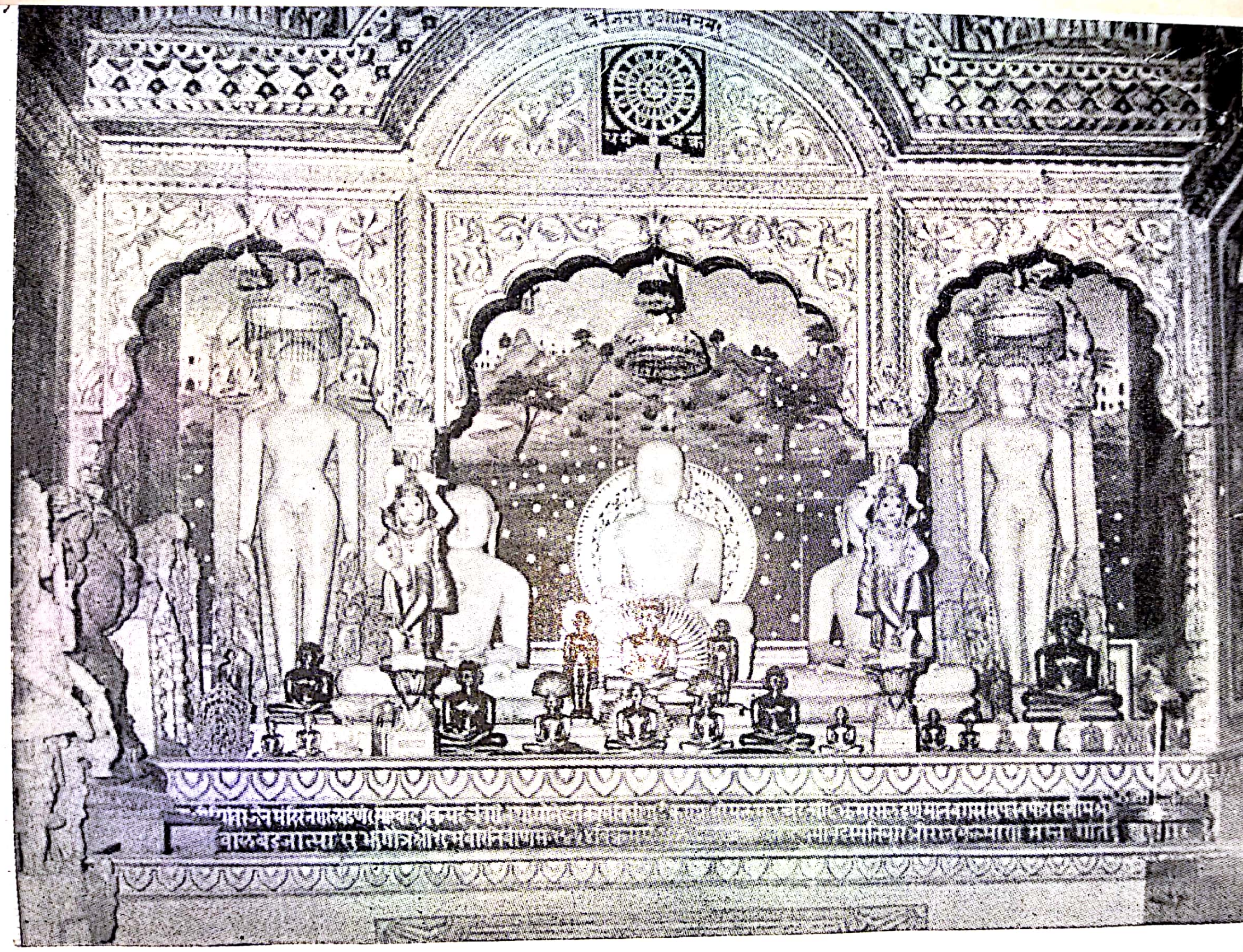

वड़े मंदिर को मुख्य (बड़ो) वेदो का विहंगम दृश्य

Scanned with CamScanner

का आधिपत्य बहुत समय तक रहा है। लाडनूं में दिगम्बर जैन बड़े मंदिर के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक महत्त्व के और सार्वजनिक स्थान भी हैं। वर्तमान में जैन मन्दिर और जैन संस्थाओं का बाहुल्य भी स्थानीय जैन समाज की धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक बहुमूल्य सेवाओं को प्रदर्शित करता है।

जैन मंदिर

१. दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर।

२. श्री सुखदेव आश्रम : आदिनाथ दिगम्बर जैनमन्दिर—श्री सुखदेवजी गंगवाल के सुपुत्रों ने इस सम्पूर्ण मन्दिर को संगमरमर पाषाण का बनवाया है। जिसमें भगवान् आदिनाथ की अष्टधातु की विशाल पद्मासन मूर्ति, तोरण, सामने मानस्तम्भ, भगवान् बाहुबली की खड्गासन् मूर्ति आदि सम्पूर्ण देश में प्रसिद्ध, अति सुन्दर एवं दर्शनीय है। इस मन्दिर के निर्माण में अनेक वर्ष लगे। ई० सन् १९५८ में इसकी प्रतिष्ठा हुई। इसमें भरत एवं बाहुबली की खड्गासन मूर्तियाँ भी अलग-अलग वेदियों में प्रतिष्ठित हैं।

३. श्री दिगम्बर जैन नशिया मन्दिर : एक वेदी, सामने मानस्तंभ तथा यात्रियों को ठहरने की व्यवस्था है। रेलवे स्टेशन के पास यह केसरी चन्द, निहालचन्द अग्रवाल द्वारा निर्मित है।

४. श्री दि० जैन बगड़ा मन्दिर : यह श्रीमान् लालचन्द जी दीपचंदजी बगड़ा द्वारा निर्मित है।

५. श्री चन्द्रसागर स्मारक मन्दिर : इसमें महावीर स्वामी की विशाल पद्मासन प्रतिमा प्रतिष्ठित है। बीसवीं सदी के आचार्यों की मूर्तियाँ भी इसमें हैं। दूसरी मंजिल में भी तीन वेदियाँ हैं।

६ जैन छतरी : बस स्टैण्ड के पास एक साथ अनेक अद्भुत् कलापूर्ण प्राचीन छतरी हैं। जो यहाँ के राजाओं तथा अन्यान्य महापुरुषों के स्मारक रूप में निर्मित हैं। इनमें एक भव्य जैन छतरी किसी भट्टारक जी के स्मारक रूप में बनी है। इसके बीच में लगे चरणपादुका पट्ट का लेख इस प्रकार है—संवत् १०६० वैसाख बदी २ सोमवार भट्टारक श्री सदश्र कीर्ति जी की पादुका। यह छतरी महावीर हीरोज भवन के अन्तर्गत स्थित है।

७. श्वेताम्बर जैन शान्तिनाथ मंदिर : इसमें अनेक प्राचीन मूर्तियाँ, शिलालेख एवं कलापूर्ण स्तम्भ हैं।

Scanned with CamScanner

दिगम्बर जैन समाज द्वारा संचालित

शिक्षण संस्थायें

१. श्री महावीर प्राथमिक विद्यालय—बस स्टैंड के पास इसका अति सुन्दर एवं बड़ा भवन है।
२. श्री महावीर हायर सेकेण्डरी स्कूल (उच्च माध्यमिक विद्यालय)।
३. श्री झिनकूदेवी बालिका विद्यालय : यह श्री फूलचन्दजी मानकचन्द जी सरावगी द्वारा संचालित है।
४. श्रीमती केसरदेवी सेठी राजकीय माध्यमिक बालिका विद्यालय : यह श्रीमान् सेठ गणपतरायजी सेठी द्वारा निर्मित है।

समाज सेवी संस्थायें

चिकित्सालय :—

१. सेठ गणपतराय सरावगी राजकीय हॉस्पिटल : श्रीमान् सेठ गणपतरायजी सरावगी द्वारा निर्मित।
२. श्रीमती केसरदेवी सेठी महिला चिकित्सालय : श्रीमान् सेठ गणपत रायजी सेठी द्वारा निर्मित।
३. श्रीमान् रिद्धकरण सरावगी राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय : श्रीमान् फूलचन्द जी माणकचन्दजी पाण्ड्या द्वारा निर्मित।
४. श्री सुखदेव राजकीय नेत्र चिकित्सालय : श्रीमान् सुखदेवजी गंगवाल के सुपुत्रों द्वारा निर्मित।
५. श्री चन्द्रसागर होम्योपैथिक औषधालय।

सार्वजनिक सेवायें

१. श्री महावीर हीरोज : वाचनालय, खेलकूद, प्याऊ एवं स्त्रियों का सिलाई प्रशिक्षण आदि।
२. जैन भवन : राहु दरवाजा के बाहर बस स्टैण्ड के सामने यात्रियों को ठहरने की आरामदायक व्यवस्था।
३. श्री लालचन्द बगड़ा धर्मशाला : यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था।
४. सेठ गनपतराय सरावगी प्याउ—रेलवे स्टेशन तथा राहु गेट पर।

बड़े मंदिर का शिखर

सं० १९७१ असोज सुदी १ को इसके शिखर की प्रतिष्ठा कराई सुखदेवजी, भैरोदानजी, तोलारामजी, हंसराजजी, वच्छराजजी गंगवाल ने।

सं० १९८७, ज्येष्ठ बदी ५, श्री भैरोदानजी गंगवाल ने समाज के खर्च से शिखर बनवाया, लेकिन शिखर ऊपर हाथ जोड़ विनती कर मूथा (गंगवाल) भैरोदान नाम लिखाया जिससे समाज ने आपत्ति की, जणाँ शिखर का सब रूपया सुखदेवजी गंगवाल के परिवार वालों ने देकर नाम कायम रखा।

जैन विश्व भारती

प्राच्य जैन विद्याओं के उच्चानुशीलन, शिक्षण, प्रशिक्षण अनुसन्धान साधना, मानव कल्याण तथा श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशन आदि उद्देश्यों से आचार्य श्री तुलसी की प्रेरणा से लाडनूं नगर में स्थापित जैन विश्व भारती एक प्रगतिशील विशाल संस्थान है। लाडनूं नगर को आचार्य तुलसी जैसे प्रभावक सन्त की जन्मभूमि होने का भी गौरव प्राप्त है। भगवान् महावीर की पच्चीस सौवीं निर्वाण शताब्दी वर्ष की वैसे तो अनेक उपलब्धियाँ हैं, किन्तु यह एक ठोस उपलब्धि है। सन् १९७४-७५ में अपनी स्थापना काल से लेकर वट वृक्ष की भाँति दिनोंदिन अपनी बहुमुखी प्रवृत्तियों में यह संस्थान उन्नति कर रहा है। विशाल क्षेत्रफल में फैली यह विश्वभारती अपने उद्देश्यों के अनुरूप निश्चित ही भविष्य में एक आदर्श विश्वविद्यालय का रूप लेगी।

जैन विद्या, प्राकृत, संस्कृत, दर्शनशास्त्र, जीवन विज्ञान तथा जैन योग एवं साधना आदि विषयों के साथ ही अन्य सभी विषयों के अध्ययन-अध्यापन, अनुसन्धान एवं प्रयोग का जो वातावरण यहाँ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। आचार्य तुलसी के अनेक शिष्य साधु एवं साध्वियाँ, समणी वृन्द, मुमुक्षु बहिनें तथा विविध विषयों के ख्यातिलब्ध विद्वान् यहाँ सदा विद्यमान रहकर उपर्युक्त कार्यों में संलग्न रहते हैं, जिनकी प्रतिभाओं का लाभ सहज ही लिया जा सकता है। विश्व भारती के सभी उदार हृदय अधिकारी भी ऐसी ही प्रवृत्तियों के प्रोत्साहन में सदा सेवा-रत रहते हैं।

आचार्यश्री तुलसी के जीवन की अणुव्रत आन्दोलन, आगम वाचना, प्रेक्षाध्यान आदि अनेक उपलब्धियों में जैन विश्व भारती एक महान् उपलब्धि है। इनके सुयोग्य उत्तराधिकारी युवाचार्य महाप्रज्ञजी की अपूर्व प्रज्ञा की इन सब उपलब्धियों में अमिट छाप है। जैन विश्व भारती के विशाल प्राङ्गण में 'तुलसी अध्यात्म नीडम्' नामक विशाल योग साधना केन्द्र है।

Scanned with CamScanner

यहाँ प्रेक्षाध्यान पद्धति से योग-साधना का प्रशिक्षण देकर हजारों लोगों ने लाभ लिया है। 'अनेकान्त शोधपीठ' नामक अनुसन्धान संस्थान से अनुसंधान, सम्पादन, अनुवाद, कोश आदि के कार्य होते हैं। इसके निदेशक सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० नथमल जी टाटिया हैं। इन्हीं के सम्पादकत्व में 'तुलसी प्रज्ञा' नामक शोध पत्रिका हिन्दी एवं अंग्रेजी विभागों में निकलती है। यहीं 'वर्धमान ग्रन्थागार' नामक विशाल केन्द्रीय पुस्तकालय है। 'समण संस्कृति संकाय' द्वारा प्रतिवर्ष जैन विद्या के पत्राचार पाठ्यक्रम से सम्पूर्ण भारत के हजारों बालक, युवक एवं प्रौढ़ जैन विद्या की शिक्षा लेकर नैतिक जीवन निर्माण एवं जैन विद्या के प्रसार में योग दे रहे हैं।

'सेवा भावी कल्याण केन्द्र' नामक विशाल रसायन शाला एवं औषधालय से प्रतिदिन हजारों रोगी लाभान्वित होते हैं। केन्द्रीय सचिवालय, अतिथि भवन, सभागार, कलादीर्घा, प्रेस तथा साधुओं के ठहरने हेतु भवन, छात्रावास, अधिकारियों, कर्मचारियों तथा अतिथियों हेतु अनेक आवास भवन एवं चारों ओर फैली हरियाली, बाग-बगीचे, वृक्षों आदि को देखने से लगता है कि यह कोई विशाल आवासीय विश्वविद्यालय है।

जैन विश्व भारती रूपी मंदिर पर कलश के समान इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है आगम प्रकाशन। आचार्यश्री तुलसी एवं युवाचार्य महाप्रज्ञ के वाचना प्रमुखत्व में सैकड़ों साधु-साध्वियाँ, समणी इस कार्य में अहर्निश लगी हैं। अंगसुत्ताणि नाम से तीन भागों में आचारांग आदि ग्यारह अंग ग्रन्थों का मूल रूप में प्रकाशन तथा आयारो, सूयगडो, समवायो, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन—इन ग्रन्थों का मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद एवं तुलनात्मक दृष्टि से पाद-टिप्पणी सहित प्रकाशन जैन साहित्य की अभूतपूर्व उपलब्धि हैं। इसके अतिरिक्त आगम शब्दकोश, देशी शब्दकोश, जयाचार्य साहित्य तथा विविध महत्त्वपूर्ण साहित्य प्रकाशित हो चुका है। गौतम-ज्ञानशाला में समणीं अहर्निश अध्ययन-अध्यापन एवं अनुसन्धान कार्य में लगी रहती हैं। जीवन विज्ञान नामक विषय आध्यात्मिक एवं लौकिक उन्नति हेतु अपने ढंग का एक नया विषय है जिसके अध्यापन का शुभारम्भ यहीं से हुआ है।

ब्राह्मी विद्यापीठ—ब्राह्मी विद्यापीठ जैन विश्व भारती की ही एक संस्था है जिसमें जैन विद्या, प्राकृत, दर्शनशास्त्र, संस्कृत, अंग्रेजी तथा अन्यान्य विषयों के अध्यापन हेतु उच्चकोटि के विद्वान् प्राध्यापक नियुक्त हैं। यहाँ पारमार्थिक शिक्षण संस्था की मुमुक्षु बहिनें अध्ययन करती हैं।

Scanned with CamScanner

यहाँ इस पुस्तक के लेखक को भी लगभग चार वर्ष सन् (१९७६ से १९७९ तक) जैन विद्या एवं प्राकृत विषय के प्राध्यापक के रूप में अध्यापन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

पारमार्थिक शिक्षण संस्था—पारमार्थिक शिक्षण संस्था अपने ढंगकी एक विशिष्ट एवं पवित्र संस्था है, जिसमें सैकड़ों मुमुक्षु बहिनें एक साथ रह कर जैन विश्व भारती द्वारा निर्धारित प्राक् स्नातक से लेकर स्नातकोत्तर, अनुसंधान उपाधि एवं जीवन विज्ञान के पाठ्यक्रम का अध्ययन करती हैं यद्यपि ऐसी अनिवार्यता नहीं है किन्तु प्रायः अध्ययन कार्य पूर्ण होने के बाद मुमुक्षु बहिनें साध्वी अथवा समणी दीक्षा लेतीं हैं। एक प्रकार से यह इन पदों के योग्य पूर्व भूमिका तैयार करने एवं संयम मय जीवन जीने की कला सीखने का प्रशिक्षण केन्द्र है, जो सन् १९४९ से कार्यरत है।

तेरापन्थ समाज एवं संस्थायें—लाडनूं में विशाल तेरापन्थी श्वेताम्बर जैन समाज है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक चेतना की जागृति में इसका एवं इस समाज के युवकों का महनीय योगदान है। युवक परिषद, तेरापन्थ युवक परिषद, महिला मण्डल, शिक्षण केन्द्र, अनेक उच्चतर माध्यमिक स्कूल, कल्याण केन्द्र, पुस्तकालय, वाचनालय, विशाल चिकित्सालय एवं औषधालय आदि अनेक प्रवृत्तियाँ इस समाज द्वारा संचालित हैं। अनेक महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकायें भी यहाँ से प्रकाशित होती हैं।

लाडनूं में दिगम्बर जैन प्रतिष्ठाओं का विवरण

यहाँ ऐसी प्रसिद्धि सुनने में आती रही है कि प्राचीन काल में तेईस प्रतिष्ठायें हो चुकी हैं, पर उसके प्रमाण उपलब्ध नहीं थे। किन्तु झालरापाटन के श्री शान्तिनाथ मन्दिर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार से एक गुच्छक प्राप्त हुआ। इसमें लाडनूं की प्रतिष्ठाओं का रोचक वर्णन है।

दूसरा विवरण श्री रतनलालजी भाट, पो० सावर, केकड़ीगेट, अजमेर (राज०) के पास उपलब्ध प्राचीन बही से उद्धृत किया जा रहा है।

१. सं० ५४९ में सर्वप्रथम लालजी गंगवाल ने प्रतिष्ठा कराई।
२. सं० ६०० में भट्टारक भानूचन्दजी के समय साह लाउणसे ने प्रतिष्ठा कराई, जिसमें ससंघ तीन सौ मुनि पधारे। इस प्रतिष्ठा में २४ करोड़ रुपया खर्च हुआ।

Scanned with CamScanner

३. सं० ६०६ में भारीजवी पापड़ीवाल ने माधवचन्दजी के सानिध्य में प्रतिष्ठा कराई।

४. सं० ६१६ में दूजा भारीज पापड़ीवाल ने प्रतिष्ठा कराई।

५. सं० ६८९ में भट्टारक देवसेनजी के समय साह जैकुमार ने प्रतिष्ठा कराई। संसघ ५१ मुनिराज पधारे। १४ करोड़ रुपये खर्च हुए। काफी धर्म प्रभावना हुई।

६. सं० ७९५ में भट्टारक विष्णुनन्दजी के सानिध्य में साह सेंढल ने प्रतिष्ठा कराई। चौबीस लाख रुपया खर्च हुआ।

७. सं० ७९६ में भट्टारक धर्मचन्दजी के सानिध्य में प्रतिष्ठा हुई। इसमें से भी चौबीस लाख रुपया खर्च हुआ।

८. संवत् ८८० में आचार्य अभयचन्दजी के सानिध्य में लोहरजी लुहाड़या ने प्रतिष्ठा कराई।

९. संवत् ८८५ में भट्टारक नरचन्दजी के बारे में गाँव लाडनूं में वीरचन्द्र पहाड़िया ने गांव धौरपुर प्रतिष्ठा कराई।

१०. संवत् ९५२ में तेजपालजी साहेमलजी ने आचार्य मूलचन्दजी के सानिध्य में प्रतिष्ठा कराई।

११. संवत् १०५२ में मनहरजी अजमेरा ने प्रतिष्ठा कराई।

१२. संवत् १०५२ में सोनपाल जी सोठल जी बड़जात्या बाग नसिया कराई।

१३. संवत् ११९० में भट्टारक भावचन्दजी के सानिध्य में कोलशी बेनाड़ा ने प्रतिष्ठा कराई। २४ लाख रुपया खर्च हुआ।

१४. संवत् ११०१ में किलोजी बेनाड़ा ने प्रतिष्ठा कराई।

१५. संवत् १११२ में कल्याणमलजी बेनाड़ा ने प्रतिष्ठा कराई।

१६. संवत् ११२५ में भट्टारक महाचन्दजी के सानिध्य में टोडरभाई, दौलतजी, गोती शाह लाडनूं वासी ने अपने गुमास्ता को जिन्स (सामान) खरीदने हेतु भेजा। उसने ग्वालियर के डूंगर में जिन-बिम्ब आदि बनवाये। बाद में साह ग्वालियर आया, राजी हुआ— धनदत्त सेठ की बेटो आपकी बेटी थरपी, ५ लाख रुपया को मायरो दीनों। मन्दिर की तथा ग्वालियर के किला को प्रतिष्ठा कराई। तीन करोड़ रुपये खर्च हुए।

१७. संवत् ११३२ में भरतरामजो करहथजी बड़जात्या ने प्रतिष्ठा कराई।

१८. संवत् ११५९ में टोडरमलजी साह ने प्रतिष्ठा कराई।

Scanned with CamScanner

१९. संवत् १२७२ में बलुसा बड़जात्या ने प्रतिष्ठा कराई।
२०. संवत् १३३४ में कुंभारामजी पाटनी ने प्रतिष्ठा कराई।
२१. संवत् १३४५ में गोधजी काशलीवाल ने प्रतिष्ठा कराई।
२२. संवत् १३५१ में भट्टारक प्रभाचन्द कीर्ति के सानिध्य में सूरजमल मैंसा ने प्रतिष्ठा कराई। इस अवसर पर एक दक्षिण का कुलमी आया उसने ११ हजार मोहरों में बोली (माला) ली। जिसने कुलमी के यहां भोजन किया वे लोहड़ सून्या कहलाये। इस प्रतिष्ठा में दक्षिण से १५०० मुनिराज, ३०० आर्यिका, ७१४ छोटी आर्यिका, १५०० ब्रह्मचारी, १८०० उपाध्याय, पण्डित आदि शामिल हुए।
२३. संवत् १३५२ में वैसाख सुदो ७ को थेलाजी, सुजाजी बड़जात्या ने प्रतिष्ठा कराई।
२४. दिगम्बर जैन बड़े मंदिर जी के शिखर की प्रतिष्ठा सेठ सुखदेवजी, भैरोदान जी, तोलाराम जी, वच्छराज जी, हंसराज जी, गजराज जी गंगवाल ने संवत् १९८७ वैशाख कृष्ण ५ को कराई।
२५. श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर (सुखदेव आश्रम) की प्रतिष्ठा २०१५ वैशाख शुक्ला सप्तमी को पं० नाथूलालजी शास्त्री इन्दौर वालों के प्रतिष्ठाचार्यत्व में हुई। इसकी प्रतिष्ठा भी श्रीमन्त सेठ सुखदेवजी गंगवाल के पुत्रों ने कराई।
२६. श्री चन्द्रसागर स्मारक की प्रतिष्ठा सेठ माँगीलालजी रामनिवास जो अग्रवाल लाडनूं निवासी ने संवत् २०१६ माघ शुक्ला १४ दिनांक १२-१-१९६० को कराई।
२७. श्री दि० जैन नशियाजी के मानस्तम्भ की प्रतिष्ठा लाडनूं निवासी श्रीमन्त सेठ केशरीचन्द निहालचन्द अग्रवाल ने संवत् २०१८ फाल्गुन शुक्ला ७ सोमवार को कराई।
२८. सं० २०२५ में यहाँ से आचार्य विमलसागर जी ने अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराके बाहर भेजीं।
२९. संवत् २०३८ में चन्द्रसागर स्मारक मन्दिर में प्रतिष्ठित मूलनायक भ० महावीर की पुनः प्रतिष्ठा कराई चन्द्रसागर ट्रस्ट लाडनूं ने।
३०. संवत् २०४१ फाल्गुन सुदी ७ चन्द्रसागर स्मारक के मन्दिर पर शिखर एवं भ० शान्तिनाथ की प्रतिष्ठा कराई सुजानगढ़ निवासी श्री नेमीचंद हीरालाल जी पाटनी ने।

उपर्युक्त प्रतिष्ठाओं में से क्रम संख्या २, ५, ६, ७, ९, १६ तथा २२–

Scanned with CamScanner

इन आठ प्रतिष्ठाओं का विवरण १० फरवरी १९७२ के साप्ताहिक "जैन गजट" में प्रकाशित पं० श्री श्री निवास जी शास्त्री के 'प्राचीन प्रतिष्ठायें एवं श्री कुन्दकुन्द स्वामी का इतिवृत्त' नामक लेख से लिया गया है। पं० जी ने यह लेख झालरापाटन के श्री शान्तिनाथ दि० जैन मन्दिर के भट्टारकीय शास्त्र-भण्डार में उपलब्ध एक प्राचीन गुच्छक के आधार पर लिखा था। शेष प्रतिष्ठाओं का विवरण श्री रतन लाल जी भाट, ग्राम सीवर (अजमेर) की प्राचीन बहियों पर आधारित है। कुछ प्रतिष्ठाओं के समय तथा अतिशयपूर्ण विवरण की प्रामाणिकता पर सन्देह होता है जो कि विशेष विचारणीय है। इन सब प्रतिष्ठाओं के अतिरिक्त प्राचीन स्तम्भों, मूर्तियों के पाठपीठ में लिखित लेखों आदि से भी प्रसंगतः जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

जैन प्रतीकों का स्वरूप :

—संकलित

आयागपट्ट—वर्गाकार या आयताकार एक शिलापट्ट होता है, जो पूजा के उद्देश्य से स्थापित किया जाता है। इस पर कुछ जैन प्रतीक उत्कीर्ण होते थे। कुछ पर मध्य में तीर्थंकर-मूर्ति भी होती है। बुहलर के अनुसार अर्हतों की पूजा के लिए स्थापित पूजापट्ट को 'आयागपट्ट' कहते हैं। ये स्तूप के चारों द्वारों में से प्रत्येक के सामने स्थापित किये जाते थे।

धर्मचक्र—यह गोल फलक में बना हुआ चक्र होता है, जिसमें बारह या चौबीस आरे होते हैं। प्रायः मूर्तियों की चरण-चौकी पर इसका अंकन मिलता है।

चैत्यस्तम्भ—यह एक चौकोर स्तम्भ होता है, जिसकी चारों दिशाओं में तीर्थंकर-प्रतिमायें होती हैं और स्तम्भ के शीर्षपर लघुशिखर-होता है।

चैत्यवृक्ष—प्रत्येक तीर्थंकर को जिस वृक्ष के नीचे केवलज्ञान होता है वह उसका चैत्यवृक्ष कहलाता है। किन्तु कला में प्रायः अशोक वृक्ष का ही चैत्यवृक्ष के रूप में अंकन हुआ है। बहुधा वृक्ष के ऊपरी भाग में तीर्थंकर प्रतिमा भी अंकित होती है।

द्विमूर्तिका, त्रिमूर्तिका—एक ही फलक में दोनों ओर एक-एक मूर्ति होती है। कभी-कभी एक ही ओर दो तीर्थंकरों की मूर्तियाँ होती हैं। इसी प्रकार एक ही फलक में एक ओर एक तीर्थंकर की और दूसरी ओर दो तीर्थंकरों की मूर्तियाँ होती हैं। किसी फलक में एक ही ओर तीन तीर्थंकरों की मूर्तियों होती हैं।

Scanned with CamScanner

त्रिरत्न—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र—ये जैनधर्म में ये तीन रत्न माने जाते है। इनके प्रतीक के रूप में एक फलक में एक ऊपर और दो नीचे छेदकर दिये जाते हैं।

अष्ट मंगल द्रव्य—स्वस्तिक, धर्मचक्र, नन्द्यावर्त, वर्धमानक्य, श्रीवत्स, मीन युगल, पद्म और दर्पण—ये अष्ट मांगलिक कहलाते हैं। इनके स्थान पर कहीं छत्रत्रय, चमर, दर्पण, भृङ्गार, पंखा, पुष्पमाल, कलश और स्वस्तिक ये आठ मंगल द्रव्य बतलाये हैं।

अष्ट प्रातिहार्य—कल्पवृक्ष, पुष्पवृष्टि, दुन्दुभि, सिंहासन, दिव्य-ध्वनि, छत्र, चमर और भामण्डल—ये तीर्थंकरों के अष्ट प्रातिहार्य होते हैं। प्रतिमाओं पर इनका अंकन गुप्तकाल से होने लगा है।

नवनिधि—नैसर्प, पिंगल, भाजुर, माणवक, संद, पाण्डुक, कालश्री, वरतत्त्व और तेजोद्भासि-महाकाल—ये नौ निधियाँ होती हैं। समवसरण के भीतरी और बाहरी गोपुरों में नवनिधि से शोभित अष्ट मंगलद्रव्य आदि रहते हैं। नवनिधि चक्रवर्ती के भी होती हैं। अतः भरत की मूर्तियों के साथ कहीं-कहीं नौ घटों के रूप में नवनिधियों का अंकन मिलता है।

नवग्रह—रवि, चन्द्र, कुज (मंगल), बुध, गुरू, शुक्र, शनि, राहु और केतु—इन नवग्रहों का अंकन द्वारों, तीर्थंकर-मूर्तियों, देव-देवी मूर्तियों के साथ भी हुआ है और स्वतंत्र भी।

मकर मुख—ये मन्दिरों की द्वार देहरियों के मध्य में तथा स्तम्भों पर मिलते हैं।

शार्दूल—शार्दूल के पिछले पैरों के पास और अगले पैरों की लपेट में एक मनुष्य दिखाई पड़ता है और शार्दुल की पीठ पर आयुध लिए कोई मनुष्य बैठा रहता है।

कीर्तिमुख—इनका अंकन प्रायः स्तम्भों, तोरणों और कोष्ठकों आदि में होता है। मालायें, लड़ियों और शृंखलायें लटकती दिखाई जाती हैं।

कीचक—स्तम्भ के शीर्षों पर बैठा हुआ मनुष्य कीचक कहलाता है जो छत का भार वहन करता है।

गंगा-यमुना—मन्दिर के द्वारों पर एक ओर मकर-वाहिनी गंगा होती है और दूसरी ओर कच्छप वाहिनी यमुना होती है।

स्वस्तिक—एक दूसरी को काटती हुई सीधी रेखायें जो सिरे से मुड़ीं होती है। इसका प्रयोग अष्ट मंगलद्रव्यों में या स्वतंत्र भी होता है।

नन्द्यावर्त—नन्द्य अर्थात् सुखद या मांगलिक आवर्त अर्थात् स्वस्तिक जैसा घुमाव या घेरा।

●

Scanned with CamScanner

चौबीस तीर्थंकरों के शासन यक्ष-यक्षिणी तथा उनके वाहन :

	तीर्थङ्कर	चिन्ह	यक्ष	वाहन	यक्षिणी	वाहन
१.	ऋषभ	वृषभ (बैल)	गोमुख	वृषभ	चक्रेश्वरी	गरुड
२.	अजित	गज	महायक्ष	गज	रोहिणी	आसन
३.	संभव	अश्व	त्रिमुख	मयूर	प्रज्ञप्ति	हंस
४.	अभिनन्दन	वानर	यक्षेश्वर	गज	वज्रश्रृंखला	हंस
५.	सुमति	चक्रवाक	तुम्बरू	गरुड़	पुरुषदत्ता	हाथी
६.	पद्म प्रभु	कमल	कुसुम	वृषभ	मनोवेगा	अश्व
७.	सुपार्श्व	स्वस्तिक	वरनन्दिन्	सिंह	काली	वृषभ
८.	चन्द्रप्रभ	अर्धचन्द्र	विजय या श्याम	हंस	ज्वाला मालिनी	वृषभ
९.	पुष्पदन्त	मकर	अजित	कूर्म	महाकाली	—
१०.	शीतल	कल्पवृक्ष	ब्रह्मा या ब्रह्मेश्वर	कमलासन	मानवी	—
११.	श्रेयांस	गेंडा	ईश्वर	वृषभ	गौरी	वृषभ
१२.	वासुपूज्य	भैंसा	कुमार	मयूर	गान्धारी	सर्प
१३.	विमलनाथ	सूकर	षड्मुख या कार्तिकेय	कुक्कुट	वैरोटिका (वैरय्या)	सर्प
१४.	अनन्तनाथ	सेही	पाताल	मकर	अनन्तमती	हंस

१५.	धर्मनाथ	वज्र	किन्नर	मीन	मानसी	सिंह
१६.	शान्तिनाथ	हरिण	किंपुरुष	वृषभ	महामानसी	मयूर
१७.	कुन्थुनाथ	बकरा	गन्धर्व	मृग	विजया या जया	मयूर
१८.	अरहनाथ	मत्स्य तरगपुष्प	यक्षेन्द्र	मयूर	तारावती	हंस
१९.	मल्लिनाथ	कलश	कुबेर	गज	अपराजिता	हंस
२०.	मुनिसुव्रत	कच्छप	वरुण	—	बहुरूपिणी	सर्प
२१.	नमिनाथ	नीलकमल	भृकुटि	वृषभ	चामुण्डी	मकर
२२.	अरिष्टनेमि	शंख	गोमेध	—	अम्बिका या कूष्माण्डिनी	सिंह
२३.	पार्श्व	सर्प	धरणेन्द्र	कूर्म	पद्मावती	हंस
२४.	महावीर	सिंह	मातंग	गज	सिद्धायिका (सिद्धायिनी)	हंस

लाडनूं विषयक शोध-टिप्पण

—स्व० श्री नथमल सेठीजी द्वारा संकलित

तीर्थक्षेत्र या सिद्धक्षेत्र आदि हम लोग जिस स्थान को बहुत वर्ष से मानते आये हैं उस स्थान के प्रति हृदय में श्रद्धा बन जाना स्वाभाविक है अगर कोई ऐतिहासिक खोज द्वारा दूसरा स्थान प्रकाश में लाता है तो भी श्रद्धा के वशीभूत दूसरी ओर लक्ष्य जल्दी नहीं जाता।

इधर भगवान् महावीर के जन्म और निर्वाण स्थान के विषय में चर्चा चल रही है। उसी प्रकार गुरुदत्तादि मुनि के स्थान फलहोडी द्रोणगिरी बड़गाँव के विषय में भी चर्चा चल रही है। द्रोणगिरी के विषय में जैन संदेश दि० १४-५-१९८१ के अंक में डा० कस्तूरचंद जैन का लेख प्रकाशित हुआ है।

लेकिन द्रोणगिरी के संबंध में भारतीय 'संस्कृति में जैनधर्म का योगदान' नामक पुस्तक के लेखक डा० हीरालालजी जैन (प्रकाशक, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल) ने पृ० ३२० में तीर्थंक्षेत्र-सिद्धक्षेत्र आदि स्थानों का विवरण दिया है। उसमें द्रोणगिरी फलहौडो [फलौदी : राजस्थान] लिखा है।

इसी संबंध में ऐतिहासिक खोज के अनुसार अभी और भी स्थान प्रकाश में आया है। जिसका विवरण नीचे दिया है। इस स्थान के विषय में भी सभी विद्वानों तथा पुरातत्त्व एवं इतिहास-वेत्ताओं से निवेदन है कि इस संबंध में खोजकर अपना मंतव्य अवश्य प्रकाशित करने का कष्ट करें। क्योंकि राजस्थान में वर्तमान लाडनूं, फलहौडी [फालोदी] द्रोणपुर [द्रोण-गिर पहाड़] छापर के समीपवर्ती स्थान में बसा हुआ है। "नैणसी की ख्यात" के अनुसार इस स्थान पर महाभारत काल में शिशुपाल बंशी डाहा-लिया पवारों का शासन बहुत समय तक रहा। उसके बाद डाहालियों से बागड़ियों ने अधिकार कर लिया और उनका राज्य द्रोणगिरी पहाड़ के नीचे बगाड़ गाँव नाम से बहुत समय तक चलता रहा। उसमें अनेक जैन मन्दिर, मूर्तियाँ, भवन आदि होंगे जो कालान्तर में ध्वस्त हो गये। उसके बाद इस क्षेत्र में मोहलों का आधिपत्य हो गया। उसके बाद संवत् १५३२ में मोहलों के बाद जोधपुर राठौड़ा का आधि-

पत्य हो गया जो बहुत समय तक चलता रहा। यह भी कहा जाता है कि कौरव-पाण्डवों के समय में द्रोणाचार्य ने द्रोणपुर बसाया था। (द्रोणगिरि को आजकल कालाडूंगर कहते हैं) द्रोणगिरि (वर्तमान कालाडूंगर) पहाड़ के ऊपर प्राचीन समय से देवस्थान थे जहाँ आजकल हनुमानजी का मन्दिर आदि हैं। पहाड़ को तलहटी में किसी समय में विशाल शहर था जो कालान्तर में ध्वस्त हो गया जिसके ऊपर वर्तमान लाडनूं नामक प्राचीन शहर है।

लाडनूं द्रोणगिरि (वर्तमान कालाडूंगर) के तलहटी में प्रायः ५-६ मील दूरी पर बसा हुआ है। लाडनूं को बूढ़ी चन्देरी भी कहा जाता है। इसका कारण संभवतः यह रहा है कि "नेणसी" के अनुसार इस क्षेत्र पर महाभारत कालीन शिशुपाल बंशी डाहालिया पवारों का आधिपत्य बहुत वर्षों तक रहा था। लाडनूं में अनेक प्राचीन अवशेष तथा वैष्णवों की भी अनेक मूर्तियाँ थीं जो प्रायः अब नष्ट हो गईं। अभी दि० जैन बड़ा मन्दिर अति प्राचीन मौजूद है जिसके तलघर में स्थित भाग जमीन के तल से प्रायः ११ फुट नीचे है। मन्दिर के खंभों पर लेख संवत् ११०३ का है। मूर्तियाँ आदि तो और भी विशेष प्राचीन हैं।

(क) तीन मूर्तियाँ काफी प्राचीन हैं जिन पर लेख वा चिन्ह नहीं हैं, ये अनुमानतः ११०० वर्ष प्राचीन हैं।

(ख) अन्य तीन मूर्तियाँ प्राचीन मनोज्ञ चौकलेट पत्थर की हैं जिन पर लेख चिन्ह नहीं हैं। ये अनुमानतः १०००-११०० वर्ष प्राचीन हैं।

(ग) मूलनायक भगवान् शान्तिनाथ की प्राचीन मनोज्ञ अतिशय युक्त मूर्ति है जिसका लेख घिस गया है। इसी मूर्ति के सामने संगमरमर का कलात्मक श्रेष्ठ तोरण है, जिसके स्तम्भों पर २४ मूर्तियाँ बनीं हुई हैं। लेख संवत् ११३६ असाढ़ सुदी ८ का है।

(घ) जैन सरस्वती की श्वेत संगमरमर से निर्मित मूर्ति लगभग ३॥ फुट ऊँची है, जो अपूर्व सौन्दर्यमयी अति श्रेष्ठ है, जिस पर लेख संवत् १२१९ वैसाख सुदी ३ का है।

(ङ) अनेक और भी प्राचीन पाषाण तथा पीतल की मूर्तियाँ संवत् ११०३ से १३८० तक की हैं।

इधर लाडनूं में अनेक मन्दिर व मकान बने हैं इनकी खुदाई में जमीन से प्रायः १५-२० फुट नीचे से जैन मूर्तियाँ, पूजा के

बर्तन, घंटा आदि पुरातात्विक सामग्री, ध्वस्त मकान आदि निकले हैं, जो वह निम्न प्रकार है:-

१. बड़े मन्दिर के कुण्ड की खुदाई में दो जैन मूर्ति, जीर्ण व खंडित प्राप्त हुई हैं।

२. श्री रिद्धकरणजी पाँड्या द्वारा निर्मित औषधालय की खुदाई में संवत् २००७ ज्येष्ठ शुक्ला ५ की एक मिट्टी के घड़े में मूर्तियाँ—१ स्फटिक मणि की, २ पीतल की मूर्तियाँ संवत् १३८० एवं १३०५ की दो पीतल की मूर्ति जिस पर लेख नहीं है, एक देवी की पीतल की मूर्त्ति तथा पूजन के सब प्रकार के बर्तन जो अभी बड़े मन्दिरजी में रखे हुए हैं।

३. श्री गणेशमलजी मोहनलालजी पाटनी के मकान की नींव खुदाई में संवत् २००३ में एक पत्थर पर पाँच तीर्थंकर मूर्तियाँ जिन पर लेख नहीं हैं, जो बड़े मन्दिर में रखी हुई हैं।

४. इसी जैन मन्दिर के सामने श्री बगड़ा दि० जैन मन्दिर के निर्माण के दौरान खुदाई करते समय अति प्राचीन एक बड़ा घंटा जो अभी पत्थर की तरह हो गया है।

५. बड़े मन्दिरजी के सामने मकान के खुदाई के नीचे प्राचीन ध्वंस मकान तथा पत्थर की ऊखली आदि प्राप्त हुई।

६. लाडनूं के पास कसूंबी से तीन प्राचीन दि० जैन प्रतिमा, जिस पर लेख नहीं है, इसी बड़े मन्दिरजी में रखी हुई हैं।

७. लाडनूं के पास ग्राम सुदरासन में एक खाती के मकान की नींव खोदते समय दो दिगम्बर जैन तोरण निकले, जिस पर लेख नहीं है। इनमें से एक तोरण तो वहां से लाकर दि० जैन बड़े मन्दिरजी में तलघर में भ० अजितनाथ की मूर्ति के साथ मध्य की वेदी में लगाया और दूसरा तोरण कुचामन स्थित दि० जैन मन्दिर में लगाया गया है।

८. लाडनूं में जब कभी खुदाई होती है वहाँ कुछ न कुछ प्राचीन वस्तुयें आदि निकलती रहतीं हैं। लाडनूं स्थित एक श्वेताम्बर अतिप्राचीन मन्दिर भी भगवान् शान्तिनाथ का है। जिसके जीर्णोद्धार का लेख संवत् १३५२ का है। इस मन्दिर की दीवाल में प्राचीन कला आदि के द्योतक अनेक कलात्मक पत्थर लगे हुए हैं।

●

Scanned with CamScanner

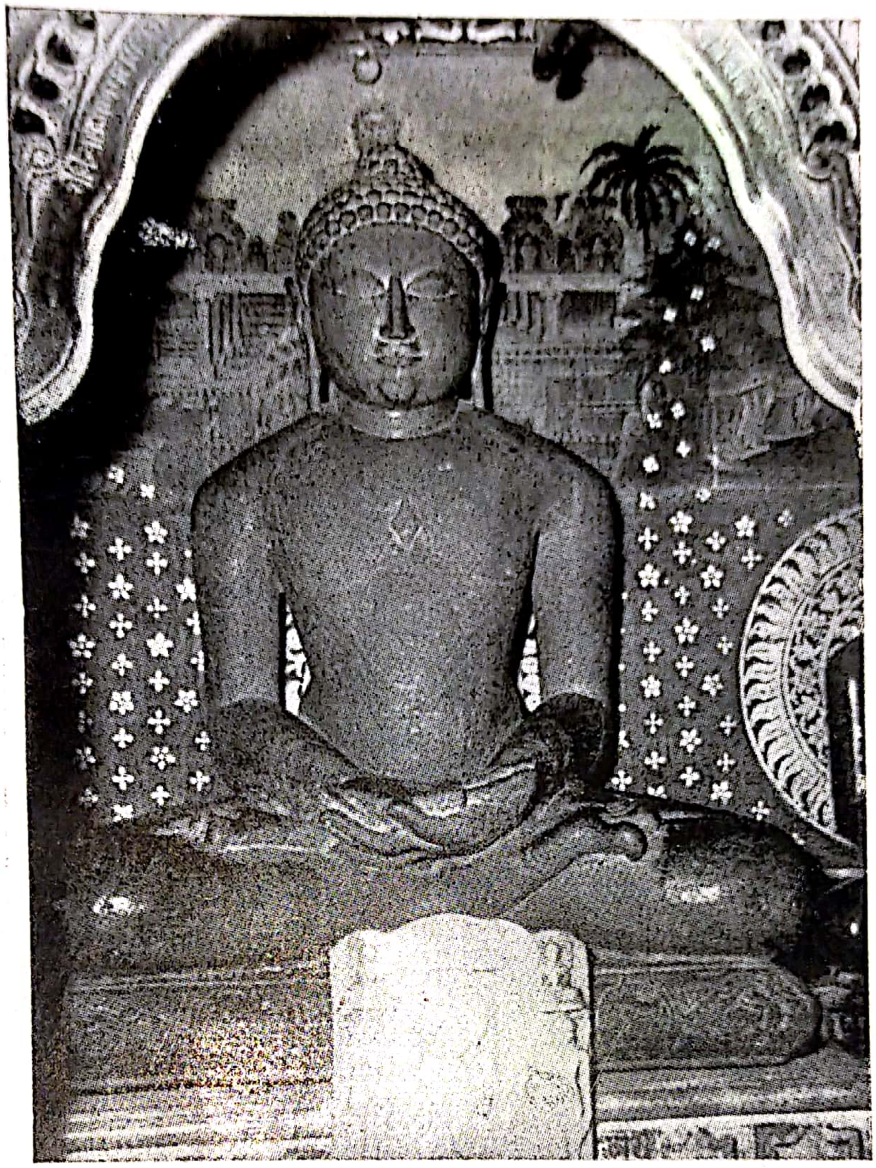

तीर्थङ्कर प्रतिमा

चाकलेटी रंग के खुरदरे पाषाण (७० × ५६ से० मी०) को यह भव्य तीर्थङ्कर प्रतिमा अनेक विशेषताओं से युक्त है। पद्मासनस्थ इस मूर्ति के पादपीठ में चिह्न एवं लेख न होने से इसे पहचाना नहीं जा सका कि यह किस तीर्थङ्कर की मूर्ति है। इसकी पादपीठ विविध बेलबूटों से सुसज्जित है। इसका आनुमानित काल १० वीं शती माना गया है।

Scanned with CamScanner

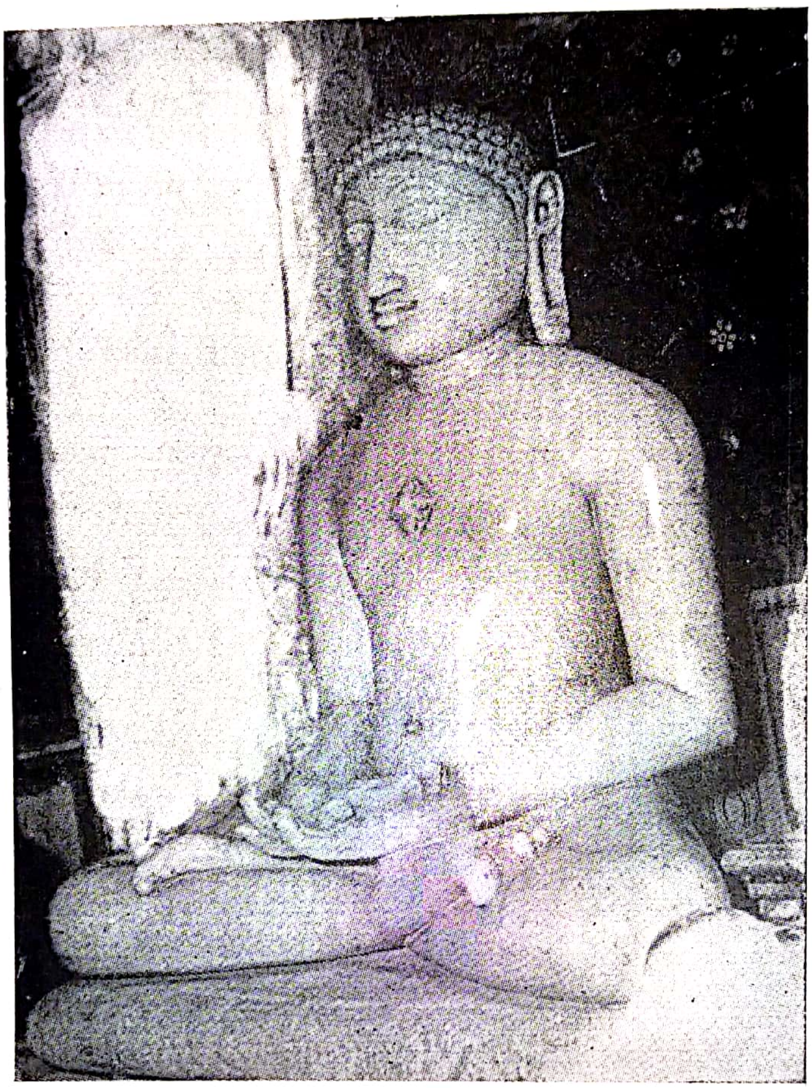

भगवान् अभिनन्दननाथ

सफेद संगमरमर की (६९ × ५४ सेन्टीमीटर) पद्मासन मुद्रा में चौदहवें तीर्थंकर अभिनन्दननाथ की बन्दर चिह्नयुक्त यह भव्य मूर्ति है। जिसके पादपीठ में लेख इस प्रकार है—सं० १२०९ बैसाखसुदी १३,

प्रतिमा सांग पुत्रेन तोल्हेनेयमुत्तमा।
अनन्तकीर्ति भक्तेन कारिता पुण्य हेतवे॥

Scanned with CamScanner

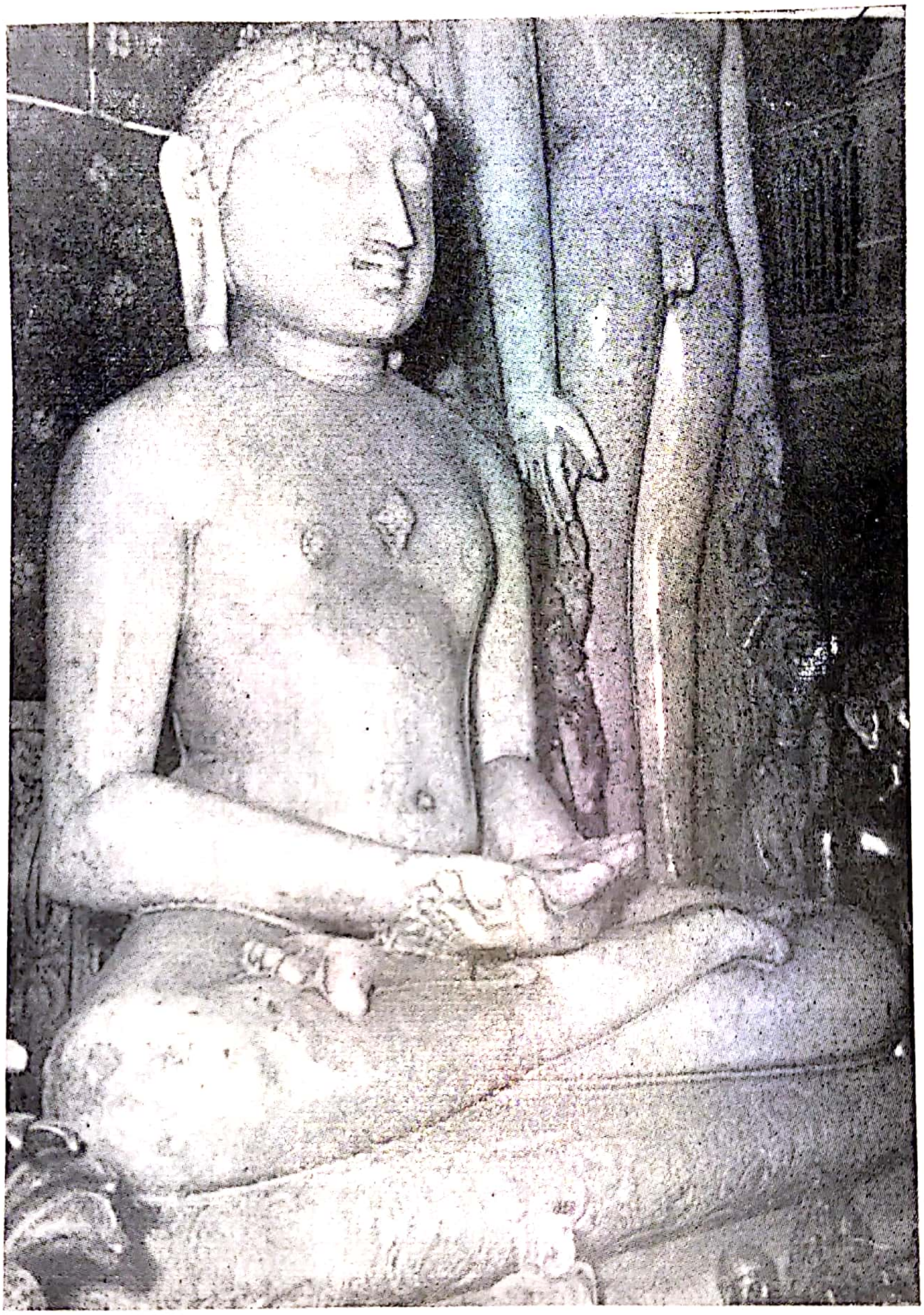

बड़ी वेदी में प्रतिष्ठित जिन प्रतिमा

सफेद संगमरमर की (६९ × ५४ सेन्टमीटर) पद्मासन यह जिन प्रतिमा चिह्न रहित है। इस पर उल्लिखित लेख इस प्रकार है—सं० १२०९ बेसाखसुदी १३, सावडास्य''''तज्जेत जिनचन्द्रेण कारिता। अनन्तकीर्ति भक्तेन प्रतिमा श्रेयसे श्रुता॥ माथुर संघे॥

Scanned with CamScanner

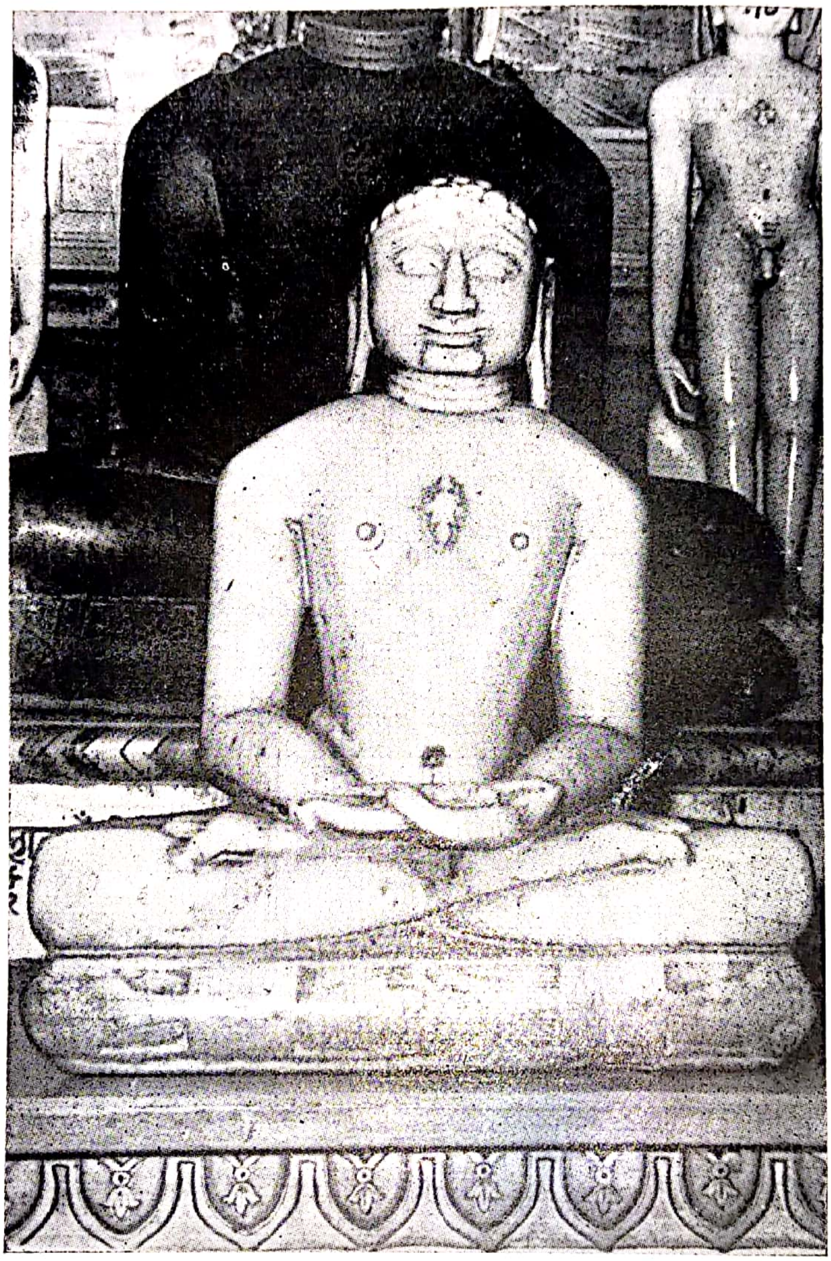

तीर्थङ्कर शान्तिनाथ

सफेद संगमरमर की (५४ × ४२ सेन्टीमीटर) पद्मासन मुद्रा में सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ की यह भव्यमूर्ति है। इसका लेख इस प्रकार है—
सं० १२४० वैसाख सुदी ९ मंडलपाल मूलसंघे....।

Scanned with CamScanner

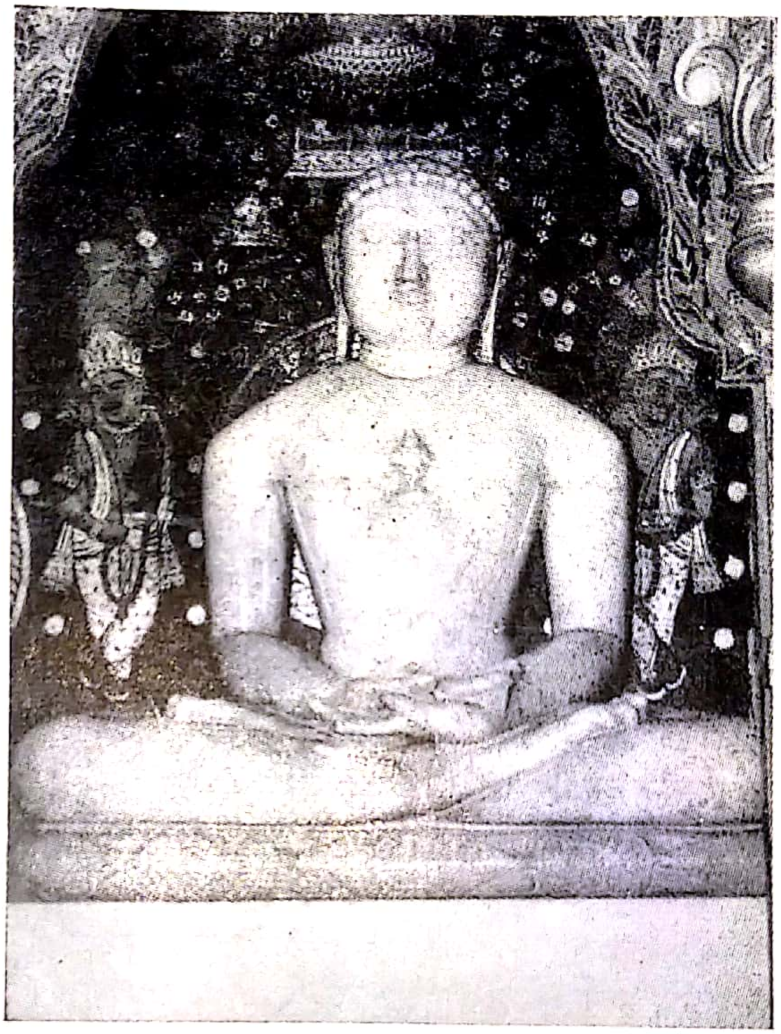

तोर्थङ्कर मूर्ति

सफेद संगमरमर की यह मूर्ति (७०×५० से०मी०) चिह्न व लेख रहित है। इसका काल भी लगभग १२-१३वीं शताब्दी का है ।

Scanned with CamScanner

तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ

सफेद संगमरमर की (५३ × ४२ सेन्टीमीटर) यह प्रतिमा आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की है। लेख इस पर उल्लिखित है—सं० १२१९ बैशाख शुक्ल ४माथुरसंघे श्री श्री श्री अनन्त कीर्ति सम्बोधित दालूण''''मति। इस पर उल्लिखित काल की दृष्टि से यह मूर्ति सरस्वती की मूर्ति के समकालीन है।

Scanned with CamScanner

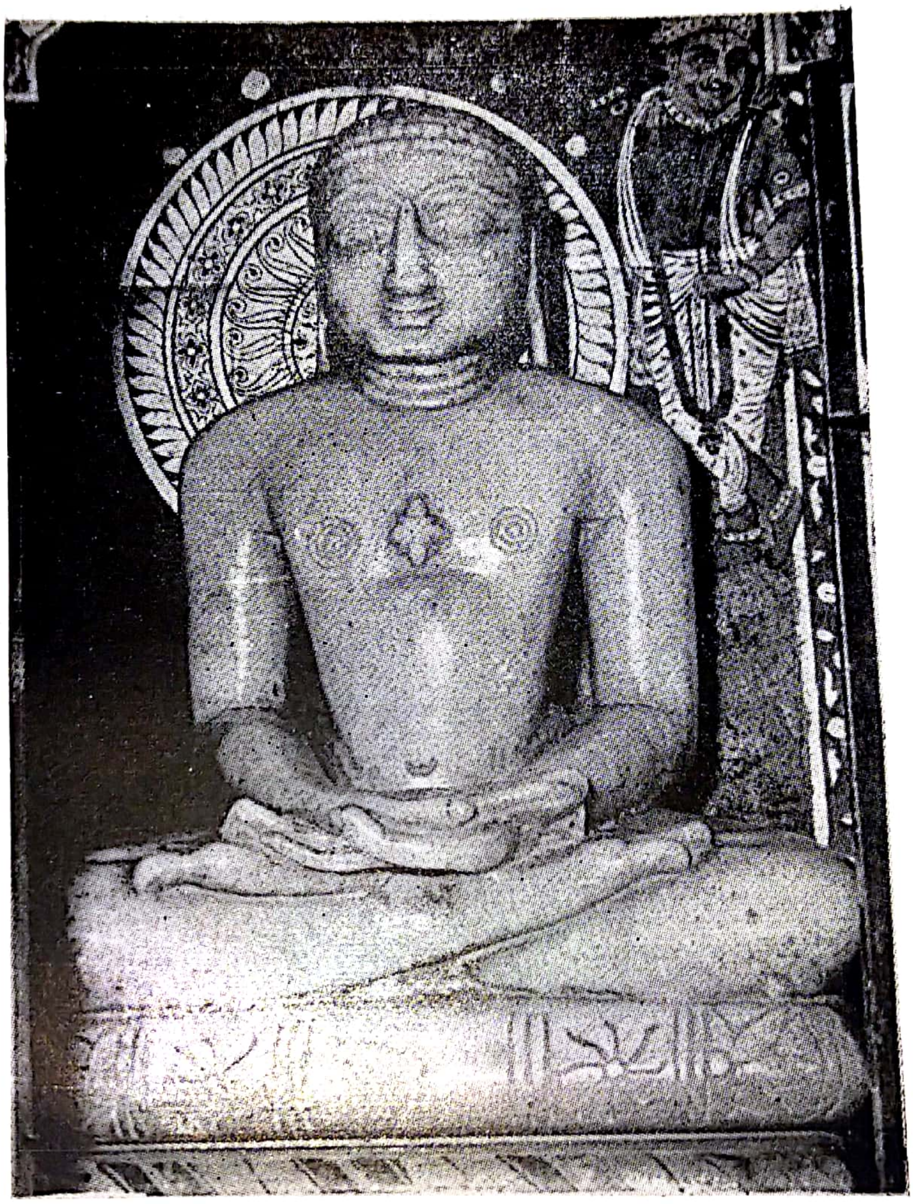

तीर्थंकर ऋषभदेव

ऋषभदेव की संगमरमर की (५३ × ३९ सेन्टीमीटर) इस प्रतिमा पर बैल का चिन्ह स्पष्ट अंकित है किन्तु लेख नहीं है। इसका आनुमानित काल १२वीं शताब्दी के आसपास का है।

Scanned with CamScanner

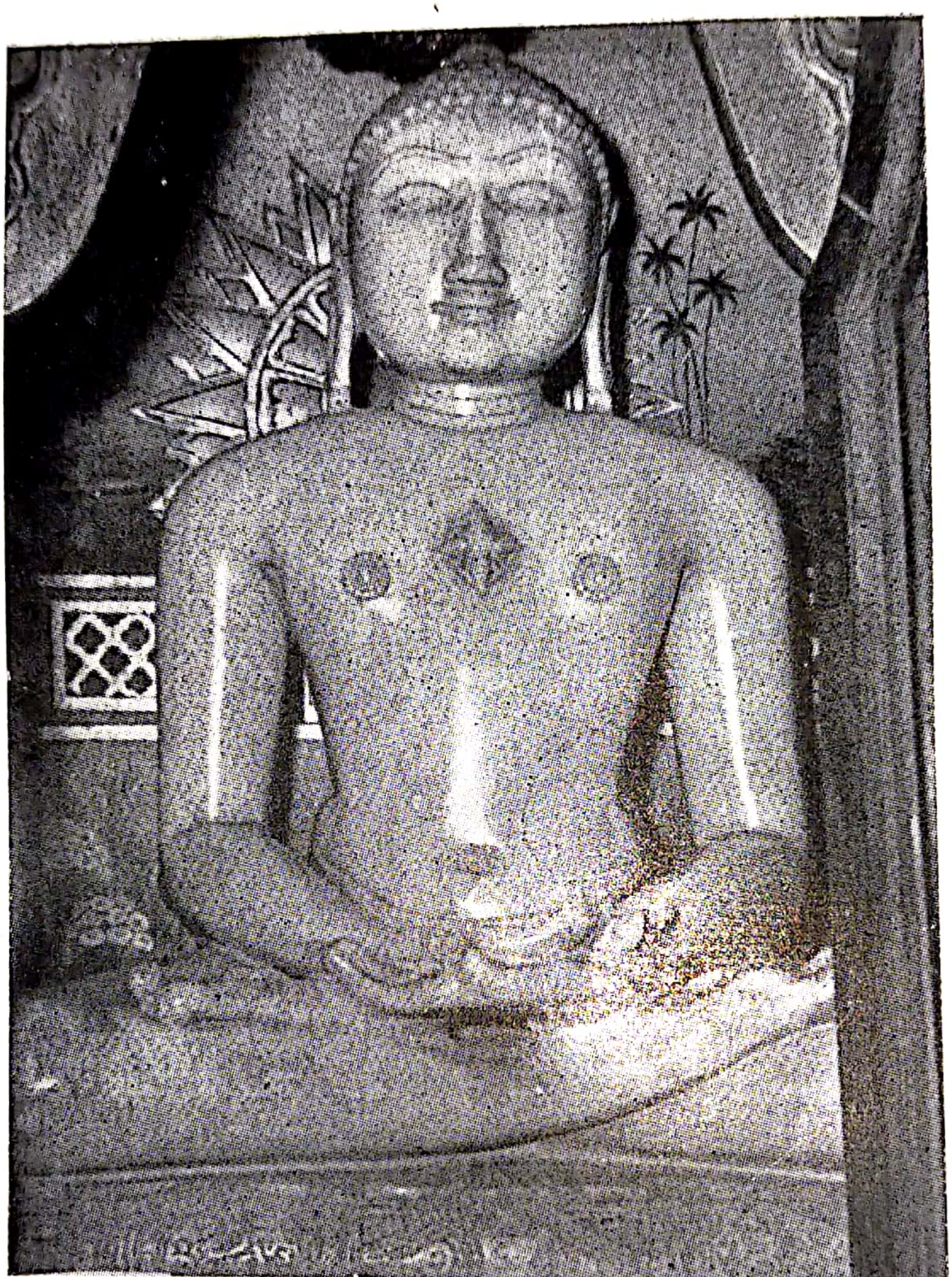

भगवान् पार्श्वनाथ

यह भव्य मूर्ति श्वेत संगमरमर (७१ × ५१ से० मी०) की है। इसके पादपीठ के मध्य में सर्प का लघु चिह्न अंकित है। इसका आनुमानित काल १३ वीं शती है।

Scanned with CamScanner

भगवान् शान्तिनाथ

श्वेत संगमरमर पाषाण की इस मूर्ति (६५ × ४९ से० मी०) के पादपीठ में हरिण का अस्पष्ट रूप में चिह्न अंकित है। इस पर उल्लिखित लेख भी अस्पष्ट रूप में इस प्रकार है—

सं० १२४४ आषाढ़ सुदी ३.........।

Scanned with CamScanner

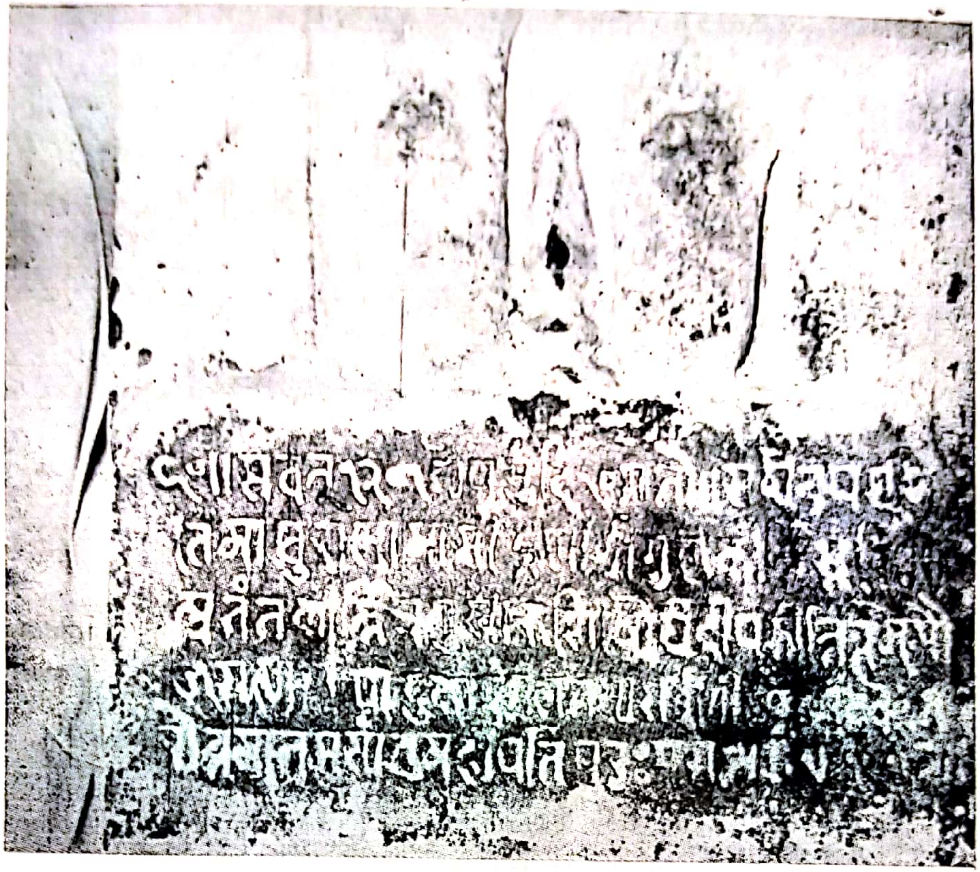

चरण पादुका युक्त स्तम्भ लेख संख्या—१

तलघर वाले मंदिरके भीतर मुख्य वेदी के बायीं ओर के मध्यवर्ती दो खम्भों में चरण पादुका युक्त दो लेख हैं। इसमें दायीं ओर के खम्भे का यह कुछ-कुछ अस्पष्ट लेख जैसा पढ़ने में आया वह इस प्रकार है—

॥ संवत् १२०१ पौष सुदी १० गतो संधेयेशीम—
ति मासुरा मामासीद् गणी श्री गुणकीर्तिसूरिः ॥
अनंतकीर्ति प्रमुखो रुणि पौर्य दीपकीर्तिः क्षेमेमौ ॥
जयतु। पादुका युगलं रणुणोदवेशनं
क्षेत्रगातप्तमासां तु शांतुमति प्रतिष्ठितः।

Scanned with CamScanner

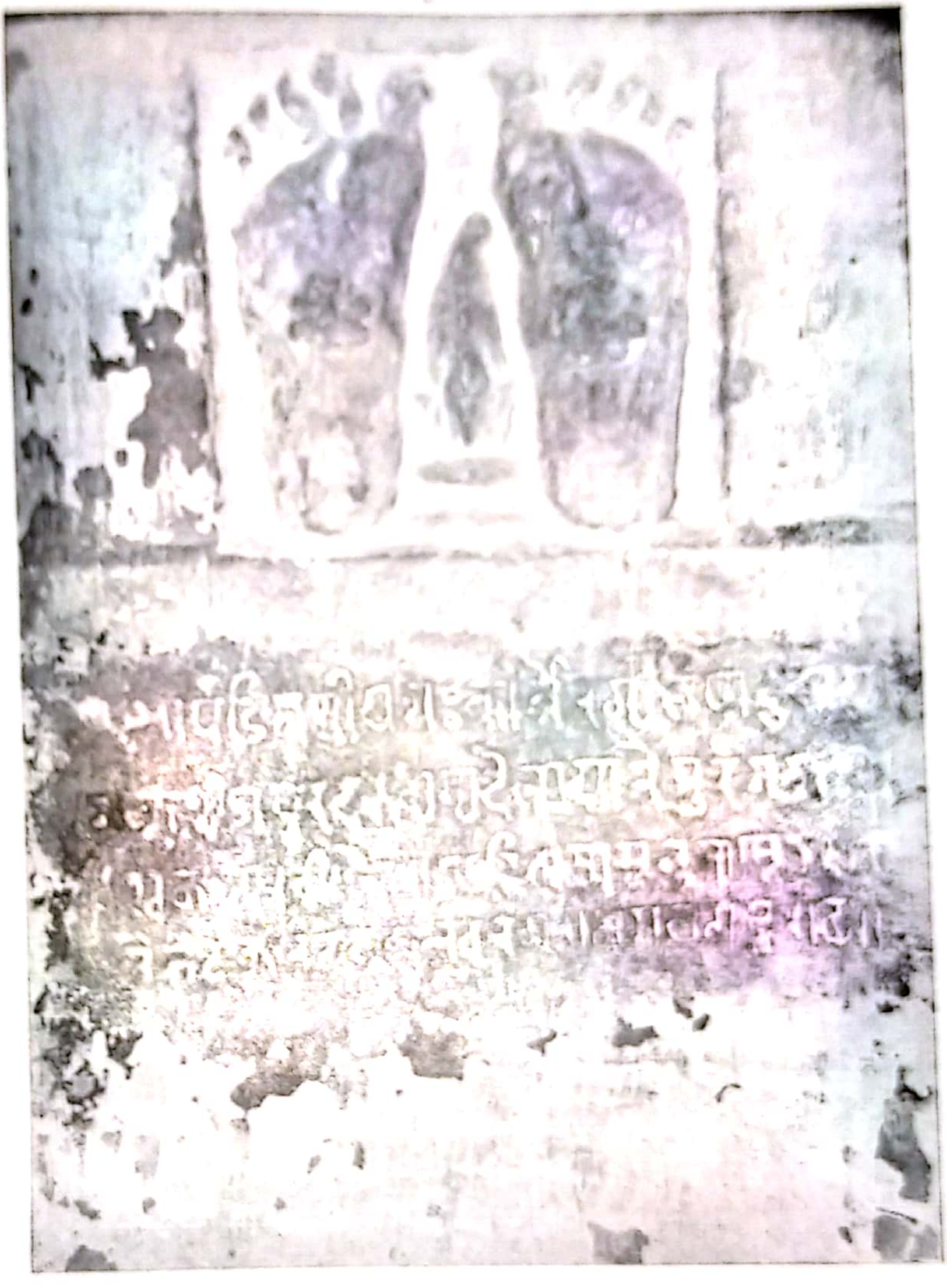

चरण पादुका युक्त स्तम्भ लेख संख्या—२

बायीं ओर इसके स्तम्भ का लेख इस प्रकार है—

पंडितश्री यशः कीर्तिरमल पादुका युग—
मासीमद्धरदरूण्स्य देल्हाद्याने मुरंगडाः ।
विश्वकर्म्मं प्रवीणेन गणादिता साभ्रनुमाभ्रिनवारामे—
ते नेदं कृतं देवकुलवरम् ॥ मंगलं भवतु ॥

Scanned with CamScanner

श्रुत भक्ति-वन्दना में लीन श्रावक-श्राविकायें :

भगवान् शान्तिनाथ वेदी के प्रमुख द्वार के भीतरी दीवार से संलग्न स्तम्भ में उत्कीर्ण यह लेख स्तम्भों एवं दीवार की सफाई के बाद अभी-अभी प्रकाश में आया है। इसके पूर्व चूना की पुताई में यह छिप गया था। लेख के नीचे श्रुत भक्ति एवं वन्दना में लीन श्रावक-श्राविकाओं का यह अंकन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें उच्चासन पर शास्त्र रखे हुए हैं। आसन के दोनों ओर वन्दन-भक्ति एवं पूजन की मुद्रा में श्रावक-श्राविकाओं का अंकन बड़ी ही भाव पूर्ण मुद्रा में हुआ है। लेख इस प्रकार है—

आचार्य श्री अनंतकीर्ति ॥ सद्दीपनि शीतलः देववरः ॥

इसीके बायीं ओरके स्तम्भ में भी एक पंक्ति का लेख है····मुनिचन्द्र। यह पूरा अस्पष्ट होने से मात्र अन्तिम शब्द ही पढ़ा जा सकता है

इसीके बगल वाले अन्य स्तम्भ का लेख इस प्रकार है—

आचार्य श्री चन्द्रकीर्ति, तद्वीय शिष्य श्री कल्पदेव····।

Scanned with CamScanner

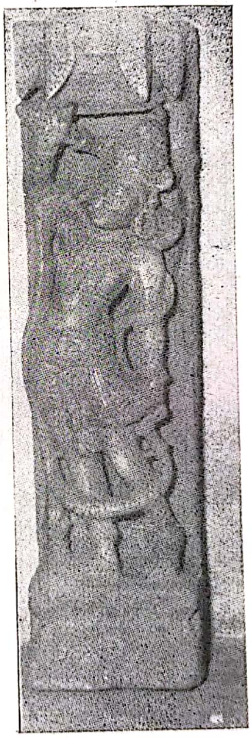

चँवरधारी देव

Scanned with CamScanner

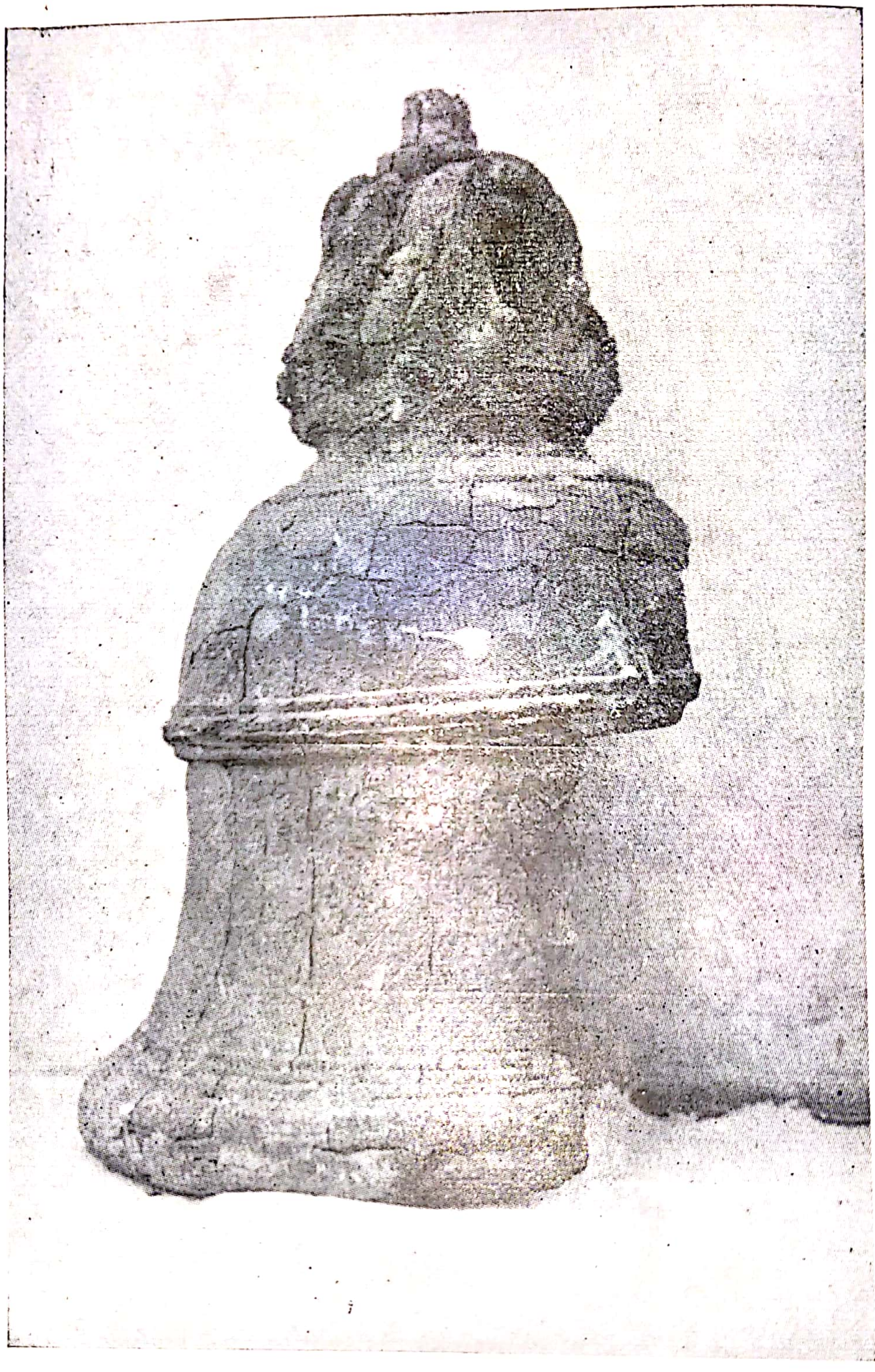

प्राचीन घण्टा

श्री दिगम्बर जैन बगड़ा मन्दिर के निर्माण काल में कुण्ड की खुदाई के समय प्राप्त धातु का यह बड़ा घण्टा इसी मन्दिर में सुरक्षित है। धातु का यह जीर्णशीर्ण प्राचीन घण्टा हजारों वर्षों से भूगर्भ में रहने के कारण मिट्टी या पत्थर मिश्रित मिट्टी के रूप में परिवर्तित हो गया है। सर्वत्र सूखी मिट्टी जैसी लम्बी-लम्बी दरारें दिखलाई देतीं हैं।

Scanned with CamScanner

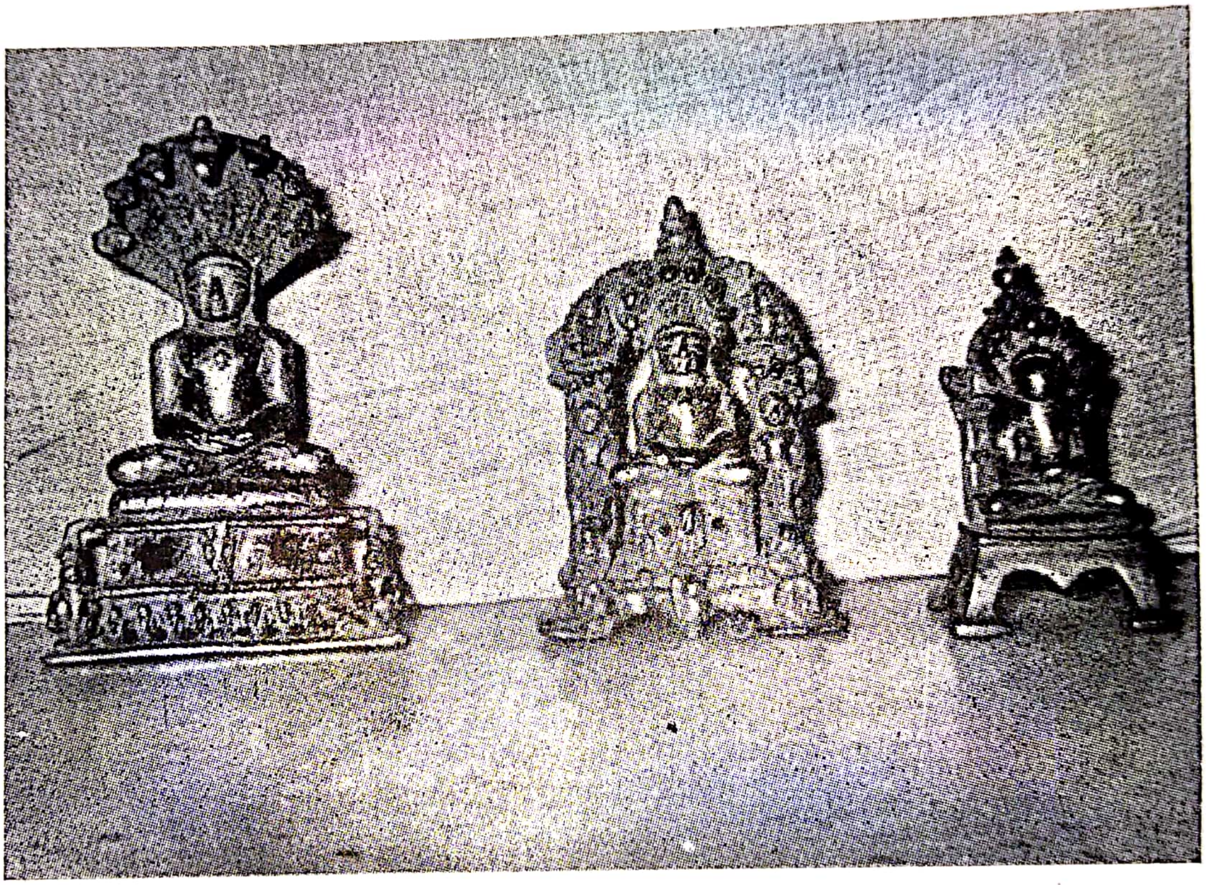

भगवान् पार्श्वनाथ की तीन लघु प्रतिमायें

Scanned with CamScanner

जैन बड़े मन्दिर की दीवारों पर उल्लिखित नीतिपूर्ण दोहे

१. सम्यक् को धारण करो, मूल मंत्र यह जान।
भव-भव के बन्धन कटें, ये ही तीर्थ महान॥

२. पानी पीवो छान कर, रोग निकट नहीं आय।
लोग कहे धरमात्मा, जीव जन्तु बच जाय॥

३. झूठे पुरुषों से कभी, कोई न करता प्रीत।
सच्चे आदर पात हैं, जग जस लेते जीत॥

४. चोर नित्य चोरी करे, सहे सदा आघात।
इधर उधर छिपता फिरे, दुःख पावे दिन रात॥

५. सेय पराई नारिको, तन मन धन को खोत।
फिर भी सुख मिलता नहीं, मरे भयानक मौत॥

६. जोड़ जोड़ संचय करे, ममता दुःख का भार।
मरना सबको एक दिन समता सुख आधार॥

७. न्यारे न्यारे पन्थ हैं, जिद की करते बात।
सच कोई ना खोजता, मारग कैसे पात॥

८. रात दिवस झगड़ा करें, कह कह चुभती बात।
घर को नरक बना दिया, शर्म जरा नहीं आत॥

९. बीड़ी, मदिरा, पीवना, नहीं भलों का काम।
भंग आदि की लत बुरी क्यों होते बदनाम॥

१०. रोगी तन को ठीक कर, ब्रह्मचर्य्य को पाल।
बिन पैसों की यह दवा, दूर भगावे काल॥

११. जुवा खेलना मांस मद, वेश्या गमन शिकार।
चोरी परनारी रमण, सातों व्यसन निवार॥

१२. काम क्रोध मद लोभ से, हिय के अन्धे चार।
नयन अन्ध इनमें भला, करे न पर अपकार॥

१३. अपनी संस्कृति सभ्यता, जो खोवत नादान।
उस मानव का होत नहीं, किसी जगह सम्मान॥

Scanned with CamScanner

१४. मात पिता की चाकरी, यह भी तीरथ जान।
सुख पावे प्राणी सदा, सुनलो देकर कान ॥
१५. मधुर वचन ही बोलिये, करे सभी सन्मान।
वशीकरण यह मंत्र है, निश्चय कर यह मान ॥
१६. काम नित्य खोटे करे, खोजे सुख का मेल।
फिरता चक्कर काटता, ज्यू घाणी का बेल ॥
१७. भीतर से धर्मी बनो छोड़ो मायाचार।
करनी-कथनी एक हो, यही धर्म का सार ॥
१८. चक्रवर्ती की संपदा, इन्द्र सारिखे भोग।
काक वीट सम गिनत हैं, सम्यक्दृष्टि लोग ॥
१९. कर्तव्य सदा करते रहो, होनी है सो होय।
मत झूठी चिन्ता करो, अंतर पड़े न कोय ॥
२०. क्रोध भयंकर है बुरा, समझो इसको आप।
मिनटों में झट मारता, गिने न माँ अरु बाप ॥
२१. झूठी शोभा कारने मत भाई धन खोय।
निर्धनता आ जायगी बात न पूछे कोय ॥
२२. अमृत वाणी कह गये, चौबीसों भगवान।
मारग उस पर ही चलो सबका हो कल्याण ॥

●

Scanned with CamScanner

प्रो. फूलचन्द जैन प्रेमी

माता एवं पिता : श्रीमती उद्यैती देवी जैन एवं सिंघई नेमिचन्द्र जैन। **जन्म एवं स्थान :** 12-07-1948, पो.आ. दलपतपुर, सागर (म.प्र.)।

कार्यक्षेत्र : एमेरिटस प्रोफेसर, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, पूर्व प्रोफेसर एवं जैनदर्शन विभागाध्यक्ष, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी; पूर्व निदेशक, भोगीलाल लहेरचन्द इंस्टीट्यूट ऑफ इंडोलॉजी, दिल्ली; पूर्व अध्यक्ष, अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद्, अधिष्ठाता—श्री स्याद्वाद महाविद्यालय भदैनी, वाराणसी; सम्पादक—जैनसन्देश।

प्रकाशित ग्रन्थ—1. मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन (तीन पुरस्कारों से पुरस्कृत प्रसिद्ध शोधप्रबन्ध), 2.लाडनूं के जैनमंदिर का कला वैभव, 3. जैनधर्म में श्रमणसंघ, 4. जैनसाधना पद्धति में तप, 5. प्राकृत भाषा विमर्श, 6. श्रमण संस्कृति एवं वैदिक व्रात्य, 7. मूलाचार भाषा वचनिका, 8. प्रवचन प्रीक्षा। शताधिक शोध एवं अन्य आलेख प्रकाशित।

पुरस्कार : 1. महावीर पुरस्कार, 2. चम्पालाल स्मृति साहित्य पुरस्कार, 3. विशिष्ट पुरस्कार उ.प्र. संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 4. श्रुतसंवर्धन पुरस्कार, 5. गोम्मटेश्वर विद्यापीठ पुरस्कार, 6. आचार्य ज्ञानसागर पुरस्कार, 7.अहिंसा इंटरनेशनल एवार्ड, 8. जैन विद्वत् सम्मेलन (श्रवणबेलगोला) संयोजकीय सम्मान (2006), 9. जैन आगम मनीषा सम्मान, जैन विश्वभारती, लाडनूं।

आवासीय पता : 'अनेकान्त विद्या भवन'
बी. 23/45, पी-6 शारदा नगर कालोनी, खोजवां,
वाराणसी- 221010; मो. नं. 09450179254
ई-मेल : anekantjf@gmail.com

Scanned with CamScanner

सदर दरवाजे के सामने की वेदी का मनोहारी बाह्य दृश्य

Scanned with CamScanner